हिन्दी-काव्य-धारा

Hindi Kavya Dha

मूल्य १)

डा० इन्द्रनाथ मदान

TO THE READER.

KINDLY use this book very carefully. If the book is disfigured or marked or written on while in your possession the book will have to be replaced by a new copy or paid for. In case the book be a volume of set of which single volumes are not available the price of the whole set will be realized.

C. L. 29.

SRI PRATAP COLLEGE

LIBRARY

Class No. 891-431

Book No. I 42 H cp: 1.

Acc. No. 10377

हिन्दी-काव्य-धारा

17, 63, 85

6, 13, 15, 25, 55,

संपादक

प्रो॰ डाक्टर इन्द्रनाथ मदन

एम. ए., पी. एच. डी.,

दयालसिंह कालिज,

लाहौर

Indra Nath

मूल्य एक रुपया

KAPUR BROTHERS
SATHU
SRINAGAR.

लाहौर

आत्माराम एण्ड सन्ज़

Published by
Brij Lal Pury of Messrs Atma Ram & Sons
Booksellers, Publishers & Printers
Lahore & Delhi.

891.431
I 42 H
acc No. 10377

Printed by
Ram Lal Pury
at
The University Tutorial Press,
Lal Chand Street, Anarkali,
Lahore.

विषय सूची

रहस्यवाद

कबीरदास ३

साखी ३

पद ७

गुरुनानक १०

वाणी १०

मलिक मुहम्मद जायसी ११

प्रेम-पाश ११

जयशंकर प्रसाद १३

विश्व के नीरव निर्जन में १३

पी कहाँ ? १४

हृदय का सौंदर्य १५

वसन्त १६

सुमित्रानन्दन पंत १७

छाया १७

मौन निमन्त्रण २०

महादेवी वर्मा	**२४**
वीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ	२४
संसार	२५
अनन्त की ओर	२७
जो तुम आजाते इक बार	२७
क्यों जग कहता मतवाली	२८
सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला	**३०**
तुम और मैं	३०
खेवा	३२
मकुमार वर्मा	**३३**
समीरण धीरे से बह जाओ	३३
मेरा देखोगे अभिनय	३४
आओ, मेरे सुंदर वन में	३४
जीवन का अन्त	३५
किरण कण	३६
जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद	**३८**
तीन कलाधर	३८
हरिकृष्ण प्रेमी	**४४**
जादूगरनी	४४
आँखों में	४६
रामधारी सिंह 'दिनकर'	**४९**
परिचय	४६

भक्ति काव्य

मीरा	५३
मीरा के पद	५३
सूरदास	५५
सूर के पद	५५
रसखान	५९
भक्त की भावना	५९
ललित लीला	६०
बाल शोभा	६१
प्रेम की महिमा	६१
अयोध्यासिंह उपाध्याय	६२
यशोदा उद्धव संवाद	६२
गोस्वामी तुलसीदास	६४
सीता की खोज	६४
तुलसी के पद	७१
मैथिलीशरण गुप्त	७४
साकेत	७४

राष्ट्रवाद

भूषण	८५
कवित्त, सवैये	८५

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	८८
भारत दुर्दशा	८८
आह्वान	८९
मैथिली शरण गुप्त	९१
मातृमूर्ति	९१
माखन लाल चतुर्वेदी	९३
फूल की अभिलाषा	९३
उन्मूलित वृक्ष	९३
राम नरेश त्रिपाठी	९५
देश सेवा	९५
सुभद्रा कुमारी चौहान	१०३
झाँसी की रानी	१०३
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	११३
विप्लव गायन	११३
शिखर पर	११५
श्रीमन्नारायण अग्रवाल	११६
रोटी का राग	११६

निराशावाद

जयशंकर प्रसाद	११९
आँसू	११९

सुमित्रानंदन पंत	**१२०**
आँसू	१२०
महादेवी वर्मा	**१२१**
मुर्झाया फूल	१२१
एक गीत	१२३
तारा पाण्डे	**१२५**
कैसे हँसू बता दो ना !	१२५
मैं ने सोचा था	१२६
परिचय	१२७
रामेश्वरी देवी 'चकोरी'	**१२९**
एक घूँट	१२६
प्रतिरोध	१३१
हरबंस राय 'बच्चन'	**१३३**
लहरों में निमंत्रण	१३३
दिन जल्दी जल्दी ढलता है	१४२
भगवती चरण वर्मा	**१४३**
हम दीवानों की क्या हस्ती	१४३
मैं एकाकी, है मार्ग अगम	१४३

उदयशंकर भट्ट १४७

विदा १४७

उस ओर १४८

सियाराम शरण गुप्त १५०

वंचित १५०

नीति-सूक्ति

रहीम १५७

सूक्ति सुमन १५७

वृन्द १६०

नीति-रत्नावली १६०

गिरिधर १६३

कुण्डलियाँ १६३

बिहारी लाल १६६

अनमोल दोहे १६६

शब्दार्थ १६९

भूमिका

कबीर

कविता सदा देश और काल के अनुसार बदलती रहती है। भारत में जब मुसलमानों ने स्थिर रूप से पाँव जमा लिये तब मुसलिम फकीर जनता में इसलाम का प्रचार करने लगे। मुसलमान एक ईश्वर को मानते थे। उनके समाज में ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं था। वे जाति भेद से मुक्त थे। धीरे धीरे इन बातों का प्रभाव हिन्दू-समाज पर भी पड़ने लगा। उस समय समाज में छोटी जाति के लोगों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। लोग अलग अलग देवी-देवताओं की पूजा करते थे। ऐसे समय में महात्मा कबीर का जन्म हुआ। आप ने हिन्दू और मुसलमानों को मिलाने का यत्न किया। एक ऐसे मत की नींव डालनी चाही, जिसे दोनों दलों के लोग स्वीकार कर सकें।

कबीर उन सन्त कवियों के प्रतिनिधि हैं जिन्होंने देश में एक नये जीवन का संचार किया, जाति-भेद-भाव को मिटाने का यत्न किया। मूर्ति-पूजा आदि का विरोध किया और निराकार उपासना का बीज बोया।

लिखा लिखी की है नहीं ; देखा देखी बात

× × × × ×

आतम अनुभव ज्ञान की जो कोई पूछै बात
सो गूंगा गुड़ खायके कहै कौन मुख स्वाद

इसलिये उस निराकार अथवा अगोचर शक्ति का अनुभव उस गुड़ के मिठास के समान है जिसको गूँगा वर्णन नहीं कर सकता। यही रहस्यवाद का मूल है । इस को कबीर आदि संत कवियों ने बार बार अपनी वाणी में वर्णन किया है। सीधी सादी अटपटी वाणी में कबीर ने गहरे रहस्य के भावों को प्रकट किया है। निराकार को पाने के लिये समाज के रीति रिवाज रुकावट हैं क्यों कि ये बंधन हृदय पर एक मायाजाल बिछा देते हैं।

गुरु नानक

निराकार की उपासना करने वाले सन्त गुरु नानक सिख संप्रदाय के प्रथम गुरु थे। आप ने अपनी मधुर वाणी से हिंदू-मुसलमानों को मिलाने का पूरा प्रयास किया। कबीर के उपदेशों का इन पर विशेष प्रभाव पड़ा था। कबीर की तरह ये भी पढ़े-लिखे न थे। केवल अनुभवी सन्त थे। इन की वाणी इन की आत्मा की वाणी थी। निराकार की उपासना करते थे । उस रहस्यमय शक्ति की खोज में सदा भजन करते रहते थे।

इस प्रकार के सन्त कवियों ने समाज पर दो भारी उपकार किये। एक तो इन्होंने हिन्दू-मुसलमानों को मिलाने का यत्न किया।

ईश्वर एक है, केवल अज्ञानवश हम उस को अलग-अलग मान लेते हैं। धार्मिक झगड़े अकारथ हैं। सब मार्ग एक ही स्थान को जाते हैं। इस तरह उस रहस्यमयी शक्ति की एकता स्थापित की। दूसरा उपकार जो इन्होंने समाज पर किया वह दलित जातियों को उठाना था।

'जायसी'

कबीर आदि सन्त कवियों की बाणी खुरदरी थी। उसमें निराकार ब्रह्म की उपासना का उपदेश दिया गया था। यह कुछ लोगों के लिये नीरस था। इस में ज्ञान अधिक था, परन्तु हृदय की कोमलता कम थी। वह ज्ञान राम और रहीम को एक ठहरा कर दोनों मतों का मेल कराने में कुछ कुछ सफल तो हुआ था परन्तु लोगों को हृदयों को नहीं छूता था। इस समय मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पदमावत' काव्य लिख कर इस आवश्यकता को पूरा किया। ये एक सूफी कवि थे। सूफी ईश्वर को निराकार तो मानता है, परन्तु उस को अनन्त प्रेम का भण्डार भी पाता है। 'पदमावत' जायसी का प्रसिद्ध काव्य है। इस में प्रेम की जो पीर बतलाई गई है वह लौकिक और अलौकिक दोनों ही दृष्टि से अनूठी बन पड़ी है। इसका कथानक अति सरल है। उस में पदमावती आदर्श है, राजा रतन सेन उस आदर्श की खोज में हैं। तोता उसका पथ-प्रदर्शक है जिस की सहायता से राजा अपने आदर्श को पा लेता है। जायसी और कबीर के रहस्यवाद में भेद यह है कि कबीर का रहस्यवाद ज्ञान-प्रधान है,

वे निराकार को पाने के लिये ज्ञान को साधन बताते हैं। उपासना उन के लिये गौण है । इधर जायसी का रहस्यवाद प्रेम-प्रधान है । प्रेम में मधुरता और कोमलता होती है । इसलिये रहस्यवाद की दृष्टि से जायसी की कविता अधिक सफल बन पड़ी है ।

जयशंकर प्रसाद

आधुनिक रहस्यवाद पर उपनिषदों और कबीर आदि सन्तों का गहरा प्रभाव पड़ा है । पुराने भावों को एक नया रूप देकर सब से पहले बंगाल के महा-कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने अपनी अमर कविता में रहस्यवाद की झलक दिखाई है। आप चाहे हिन्दी भाषा के कवि नहीं हैं, परन्तु आप की कविता का हिन्दी-कवियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। कोई इस को छाया-वाद के नाम से पुकारता है कोई प्रकतिवाद के नाम से। यह वाद विवाद मेरे विचार में अकारथ है । कविता में वास्तविक वस्तु जीवन का गहरा अनुभव ही है। आजकल की कविता में रहस्यवाद की प्रधानता का एक कारण तो यह है कि शहरों में बसने से कवियों की दृष्टि प्रकति के सुन्दर दृष्यों की ओर अधिक आकर्षित होने लगी है। शहर का जीवन कृत्रिम है। वहाँ के लोग सीधे और सरल नहीं होते। मनुष्य वहाँ अपनी आत्मा को बन्द ही पाता है। उस को विकसित करने के लिये वह प्रकृति की ओर भागता है। इस काम में कविता सहायता देती है ।

आधुनिक कवियों में इस प्रकार की कविता लिखने वालों में स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद का नाम सब से पहले आता है। इनकी कविता के मुख्य विषय है प्रकृति का सौंदर्य, हृदय का विषाद और आँसू। इन सब में रहस्यवाद की अपेक्षा जीवन की पीड़ा, हृदय की आशा-निराशा और विकलता अधिक है। हृदय के सौंदर्य में कवि दिल खोल कर प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन करता है। इसी तरह 'वसन्त' कविता में कवि जीवन की आशा वा निराशा का उपमाओं द्वारा वर्णन करता है।

सुमित्रानन्दन पन्त

पन्त ने रहस्यवाद की कविता में एक युगान्तर-सा पदा कर दिया है। आप का रहस्यवाद अधिकतर प्रकृति के सुन्दर दृश्यों तक सीमित रहता है। पन्त पर्वतीय होने के कारण नदी, नालों, पहाड़ों, बादलों, किरणों आदि का अनुपम वर्णन करते हैं। इन में सूक्ष्म रूप से उस परोक्ष शक्ति का भी आभास करा देते हैं। परन्तु सौंदर्य के पुजारी होने के कारण प्रकृति में, खेल में बच्चे की तरह, अपने आप को इतना भूल जाते हैं कि इस को खिलाने वाली शक्ति इन की आँख से ओझल हो जाती है। प्रकृति की रमणीयता से चकित हो कर आप उसी का वर्णन करने लग जाते हैं। इसी लिए आप की कविता को छाया वाद के नाम से भी पुकारा गया है। इनमें केवल प्रकृति के दृश्यों की रमणीयता ही नहीं बल्कि शब्दों की कोमलता और मृदु-लता भी है। आप सदा ऐसे शब्दों की खोज में रहते हैं जिन में

मधुरता भरी हो और संगीत हो। आप की तुलना उस चित्रकार से की जा सकती है जो कभी कभी भावों का परित्याग कर चित्र को विविध रंगों से सजाने का काम करने लगता है। उसमें कृत्रिमता तो आ जाती है, परन्तु चित्र आँखों को भला लगता है। इसी तरह पन्त की कविता में कभी-कभी स्वाभाविकता का परित्याग हो जाता है। यही कारण है कि आपकी कविता में भावों का वेग कम है और कोमलता अधिक है। पंत आँखों और कानों के कवि हैं। रूप और संगीत आपकी कविता का आदर्श है। सौन्दर्य के आप पुजारी हैं।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

रहस्यवाद के कवियों में आप विशेष स्थान रखते हैं। आप ने बंगाल में रह बँगला साहित्य का पर्याप्त अध्ययन किया है। स्वामी राम कृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के विचारों पर गहरी दृष्टि डाली है। इसलिये आप की कविता में वेदान्त की झलक स्पष्ट मिलती है। आप ने आत्मा और परमात्मा के अटूट सम्बन्ध, जीवन की असारता और संसार की मोह-माया आदि प्राचीन विचारों को मौलिकता का रूप दिया है। 'तुम और मैं' कविता यह में अटूट सम्बंध प्रकट कर इसको एक गम्भीर रहस्यवादी कविता बना दिया है। कविता कुछ उपमाओं के बोझ से दबी हुई सी है। विचारों की गम्भीरता अधिक होने के कारण आपको दार्शनिक रहस्यवादी कवि भी कहा जा सकता है।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा छायावाद या रहस्यवाद की प्रमुख कवयित्री हैं। आपका बचपन से भगवान बुद्ध के प्रति अनुराग रहा है। बुद्ध इस संसार को दु:ख-सागर समझते थे इस लिये आपकी कविता में भी निराशा की झलक पाई जाती है। आपका अनुभव है कि असीम दु:ख का अन्तिम परिणाम आनन्द होता है। दु:ख की हिलोरों से सुख का अनुभव होता है। 'नीहार' और 'रश्मि' की रचनाओं में दु:खवाद की भावना इतनी अधिक है कि ऐसा जान पड़ता है मानों कवयित्री इस आदेश को पाने के लिये व्याकुल हैं। 'गीत' नामक कविता में इस बात की झलक है कि हमारा जीवन एक वीणा के समान है। इस वीणा से मधुर संगीत को पैदा करना वादक के हाथ में है। यह अज्ञात बजाने वाला हमारे अनजान में कितनी बार आकर इस वीणा से कभी बेसुरी और कभी मधुर झंकार बहा जाता है। यह कभी विश्व-संगीत में मिल कर उस से एक हो जाती है और अभी बेसुरी होकर उससे अलग। महादेवी के मन-मोहक गीत प्राणों में जीवन संचार करने वाले हैं।

अन्य रहस्यवादी कवि

श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद छायावाद के प्रसिद्ध कवियों में से हैं। आपकी पहली कविताओं में प्रकृति के सौन्दर्य का परिचय मिलता है उसके बाद फूल, कली, उपवन, भ्रमर आदि विषयों पर आपने कवितायें लिखी हैं। उनमें सरसता और मधुरता है। इस के बाद कवि ने रहस्य

के घूँघट को खोलने का प्रयास किया है। कवि अनन्त को प्रकृति के भीतर हँसते हुए देखता है। सुख दुःख के पार बसने वाले आनन्द को पाने का यत्न करता है। 'तीन कलाधर' इसका नमूना है ।

डाक्टर रामकुमार वर्मा रहस्यवादी कवियों में अपना विशेष स्थान रखते हैं। आप की रचनायें भावों से ओत प्रोत हैं। विचारों की गम्भीरता और भाषा की मधुरता का अनोखा मेल आपकी कविताओं में मिलता है।

इन सब रहस्यवादी कवियों में दो बातें पाई जाती हैं। सब से पहले ये कवि उस अज्ञात और अनन्त की झलक पाने का यत्न करते हैं। इस शक्ति का अनुभव वे प्रकृति के विचित्र रूपों में पाते हैं। इन कवियों में दूसरी बात यह है कि ये जीवन की अनेकता में एकता का अनुभव करते हैं। ये दोनों भाव रहस्यवाद की कविता में आदि काल से चले आ रहे हैं। रहस्यवाद की अटूट धारा कबीर से लेकर आज तक बहती चली आ रही है। कबीर आदि संत कवियों का रहस्यवाद ज्ञान-प्रधान था। जायसी आदि सूफी कवियों का रहस्यवाद प्रेम-प्रधान था और आज कल के रहस्यवादी कवियों का सौन्दर्य-प्रधान है।

भक्तिवाद

कबीर आदि सन्त कवियों ने लोगों को निराकार राम की उपासना का उपदेश दिया। साधारण लोगों के लिये यह जटिल बात थी कि वे निराकार की उपासना कर सकें। इस के सिवाय अपने पुराणों के

साकार देवताओं को छोड़ना भी आसान न था। तुलसीदास ने साधारण लोगों के लिये राम को सगुण मान कर अपने भक्ति-भाव का परिचय दिया। गोस्वामी तुलसीदास राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं। ये बाँदा के जिले में राजापुर गाँव के निवासी थे। इन के भक्त और कवि बनने का कारण बड़ा विचित्र है। कहा जाता है कि विवाह के बाद एक बार इनकी स्त्री अपने मायके चली गई। ये घोर वर्षा में अपनी सुसराल पहुँचे। वहाँ स्त्री ने इन को बहुत फटकारा और कहा कि यदि आप इतनी भक्ति राम की करें तो आप को मुक्ति मिल जाय। इस घटना ने इन के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। स्त्री से विरक्त होकर तुलसीदास साधु बन गये और राम भक्ति में लीन हो गये, 'राम चरित मानस' और 'विनय पत्रिका' इन की अमर रचनायें हैं। 'विनय पत्रिका' में इन्हों ने भक्त को दीन बतला कर भगवान को क्षमाशील अंकित किया है। भक्ति रस का जितना प्रवाह विनय-पत्रिका में मिलता है उतना और किसी पुस्तक में नहीं मिलता। कविता की दृष्टि से 'राम चरित मानस' अधिक सफल है। इस के विशाल संसार में अनेक पात्र हैं, अनेक भाव हैं, अनेक वर्णन हैं और अनेक रस हैं। यह महा काव्य भक्ति और कविता की दृष्टि से एक अमर रचना है।

मैथिलीशरण गुप्त

तुलसीदास के बाद राम-चरित्र को इतने विशद रूप में और किसी ने अंकित नहीं किया। श्री गुप्त जी ने साकेत लिख कर रामायण

की कथा को खड़ी बोली में उपस्थित किया है। साकेत नगरी का नाम है। इस नगरी में कवि सब चरित्रों के दर्शन एक बराबर करा देते हैं। इस महाकाव्य में भक्ति-भाव इतना अधिक नहीं है जितना रामायण में। राम अवतार के रूप में प्रकट नहीं होते बल्कि महा पुरुष के रूप में। यह भेद समय के अनुकूल है।

मीराबाई

कृष्ण भक्ति के प्रमुख कवियों में मीरा का नाम अमर है। इन की कविता में एक प्रकार की ऐसी टीस है जो किसी और कवि में नहीं मिलती। इस प्रकार की गहरी वेदना जो इनके प्रसिद्ध पद "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई" में मिलती है, कम देखने में आती है। इन की कविता में केवल वेदना ही नहीं, भगवान कृष्ण के लिये पवित्र प्रेम भी है। उनको मीरा अपने जीवन का आदर्श समझती हैं। इस आदर्श को पाने के लिये वह अपने को बार बार खो देती हैं। पागलों की तरह वन-वन में डोलती हैं। कहा जाता है कि विवाह के दस बरस के भीतर ही मीरा विधवा हो गई थी। पर वैधव्य का मीरा को तनिक भी शोक नहीं हुआ। मीरा के हृदय में भगवान के लिये अगाध प्रेम था। इनके पदों में मधुर संगीत है, भक्तों की तन्मयता है, वेदना है, हृदय की सरलता और भोलापन है।

सूरदास

सूरदास कृष्ण भक्ति के प्रमुख कवि हैं। इनकी सरस वाणी से लोगों के सूखे हुए हृदयों में आशा के अंकुर पनप पड़े। उस समय

जनता दुखी और पीड़ित थी। दुःख में भगवान का नाम याद आना स्वाभाविक बात है। पीड़ित जनता भगवान की भक्ति में अपने दुखों को भुलाने लगी। सूरदास ने 'सूर सागर' लिख कर लोगों के लिये भक्ति का प्रवाह बहा दिया। कहा जाता है कि इस पुस्तक में सवा लाख पद थे। आजकल छः हज़ार से अधिक पद नहीं मिलते। इनकी कविता का मुख्य विषय है कृष्ण की लीला जो फुटकर पदों में अंकित की गई है। सभी पद गाये जा सकते हैं। इन पदों की भाषा मधुर, सुकुमार और संगीतमयी है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

आपने 'प्रियप्रवास' लिख कर भक्ति कविता के गौरव को बढ़ाया है। यह काव्य आप ने खड़ी बोली में लिखा है। काव्य का विषय है कृष्ण का गोकुल से प्रवास। कृष्ण की लीलाओं का भी इसमें वर्णन है। माता के वियोग का वर्णन अति करुण है। कृष्ण को इस काव्य में एक महापुरुष की भाँति अंकित किया है। अवतार के रूप में नहीं। यह आधुनिक युग का प्रभाव है। 'प्रिय-प्रवास' भक्ति धारा की कविता की आधुनिक रचना है। अब कृष्ण भक्ति की कविता लिखने की रीति धीरे धीरे कम हो रही है।

निराशा वाद

निराशा वाद हिन्दी कविता की तीसरी धारा है। आधुनिक युग में जनता को धर्म और भक्ति पर इतना विश्वास नहीं रहा जितना पहले था। दुःख की मात्रा बढ़ रही है। धर्म शांति नहीं देता। यह

बात निराशा के भावों को पैदा करती है। समाज के बंधन भी निराशा-जनक हैं। कवि इन को तोड़ फोड़ कर फेंक डालना चाहता है। इसके सिवाय स्त्रियाँ पुरुषों के अन्याय को अनुभव करने लगी हैं। वह भी निराशा के भावों से रँगी हुई कविता लिखती हैं। आजकल बेकारी के कारण समाज की दशा शोचनीय है। किसानों की गरीबी, शिक्षित लोगों की बेकारी, स्त्रियों की दीनता, धर्म और कर्म में अविश्वास—इन सब के कारण परिस्थिति करुणामयी हो गई है। कवि निराशा के भावों को प्रकट न करे तो क्या करे ?

तारा पांडे

निराशा वाद की कविता लिखने वालों में तारा पांडे का स्थान प्रमुख है। बचपन में आप को माता के स्नेह से वंचित होना पड़ा। आपकी बहुत सी कवितायें बीमारी की हालत में लिखी गई हैं, इस लिये कविता में जो वेदना और निराशा के भाव मिलते हैं वे कोरी कल्पना नहीं परन्तु सच्चे अनुभव हैं। भाषा और शैली इतनी पक्की हुई नहीं हैं परन्तु भावों में सरल वेदना और जीवन की पीड़ा है। 'शुक पिक' की कविताओं में भाषा अधिक मँजी हुई है। भाव भी पके हुए हैं। पदों में संगीत और लय है। वेदना में मधुरता है।

रामेश्वरी देवी चकोरी

निराशा के भावों को प्रकट करने वाली स्वर्गीया चकोरी भी थीं। 'एक घूँट' में चकोरी अपने आप को सागर के किनारे पाती हैं। वहाँ पर महा कलरव सुनती हैं। इस संसार में कोई उनको आश्रय देने

वाला नहीं है। बादल गरजते हैं। समुद्र की तरंगें बढ़ती हैं। बिजली आशा का चिराग लिये चमकती है फिर बुझ जाती है। भीषण अट्टहास होता है। चकोरी सागर की तरल तरंगों को पकड़ना चाहती है। वह भी हाथ से निकल जाती हैं। इस के बाद सागर की लहरें शांत होती हैं। अरुण मुसकराता है। लहरें प्रलय का गान गाती हैं, जीवन की आशा मिट जाती है। इस प्रकार के भाव आपकी कविता आ में मिलते हैं।

भगवतीचरण वर्मा

इस निराशा युग के भगवतीचरण वर्मा प्रमुख कवि हैं। आपकी कविता जीवन की वेदना से भरी हुई है। आप लिखते हैं, जीवन एक गति है। इस लिये संसार में कोई चीज स्थायी नहीं है। हर एक भावना बनती है और बिगड़ती है। फिर बनना और बिगड़ना संसार की गति है। यही इस का नियम है। गति ही जीवन है। असफलता जीवन का प्रधान अंग है। कवि निराशा के भावों में बह नहीं जाते, उन पर विजय पाने का यत्न करते हैं। प्रयास में कभी कभी सफल भी हो जाते हैं। जब आशा और निराशा को, सुख और दुःख को एक बराबर समझते हैं; तब दुःख पर विजय ही पा जाते हैं। सुख सपना और मन का छल है। दुःख भी मन की भ्रांति है। वर्मा जी के निराशावादी भावों का आधार ज्ञान है। आपकी कविता में विचारों की मात्रा अधिक है।

बच्चन

'बच्चन' की कविता में जीवन का सूनापन, विषाद और पीड़ा है।

आप बार बार आँसू बहा कर दिल की पीड़ा को हलका करते हैं। 'एकांत संगीत' और 'निशा निमंत्रण' की कवितायें निराशा के भावों से ओत प्रोत हैं। जीवन की अँधियारी, बादलों की गर्जना, बिजली की चमक, जीवन का अकेला पन—इस तरह के भाव बार बार कविताओं में मिलते हैं। ऐसी कवितायें आधुनिक युग में और भी अधिक लिखी जायँगी। अभी तो संसार को आशा की रेखा नहीं दीख पड़ती।

राष्ट्रवाद

सब से पहले वीर कविता गाथा रूप में मिलती है। वीर कविता का दूसरा काल मुगलों के राज का है जब शिवाजी, छत्रसाल और गुरु गोविन्दसिंह रणभूमि में उतर आये। महाकवि भूषण इस काल के कवि हैं। इन की वाणी हिन्दू जाति की वाणी है। यह आरम्भ से ही तीखे स्वभाव के पुरुष थे। कहा जाता है कि युवावस्था में यह बिलकुल निकम्मे थे। काम काज कुछ नहीं करते थे। इन के बड़े भाई चिन्तामणि राज-कवि थे। इस बात का इन की भावज को बड़ा गर्व था। एक दिन भोजन करते समय इन्होंने भावज से नमक माँगा। वह इन के निकम्मेपन पर खीझ उठी और चिढ़ कर ताना दिया, क्या नमक कमा कर भी लाते हो या केवल माँगना ही आता है? भूषण का स्वभाव इतना तेज़ था कि उसी दम भोजन छोड़कर घर से चल दिये।

शिवाजी हिन्दू जाति के रक्षक थे। भूषण कवि ने उन का यशगान करके हिन्दू जाति को जागृत किया। इन का विचार था

कि यदि शिवाजी न होते तो सब हिन्दुओं को इसलाम स्वीकार करना पड़ता। भूषण की कविता में एक प्रकार का खुरदरापन है। यह तलवार और वीरता की कविता है।

मैथिलीशरण गुप्त

प्राचीन गौरव को जगाने वाले प्रमुख कवि मैथिलीशरण गुप्त हैं। जब समाज पुराने आदर्शों को भूल रहा था तो आपने भारत-भारती पुस्तक लिख कर उन आदर्शों को फिर से जगाने का सफल यत्न किया। आप हिन्दू समाज और संस्कृति को जगाने वाली राष्ट्रीय कविता लिखते हैं। आपका हिन्दी कविता में अमर स्थान है क्योंकि आपने फिर से समाज की मर्यादा को स्थापन रखने का यत्न किया है। यह मर्याद अंगरेज़ी सभ्यता के आने से अस्तव्यस्त हो रही थी। आपने बिखरे हुए आदर्शों को एक स्थान पर संगठित किया है।

राष्टवाद का युग

धीरे-धीरे देश की परिस्थिति बदलती गई। लोग अनुभव करने लगे कि भारतबर्ष में केवल हिन्दू ही नहीं बसते, परन्तु मुसलमान भी निवास करते हैं। नई कविता जो लिखी जाने लगी उस पर गांधी जी और कांग्रेस के आदर्शों का गहरा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार की कविता लिखने वाले श्री माखन लाल चतुर्वेदी; श्री बाल कृष्ण नवीन, श्री सिया राम शरण गुप्त, श्री राम निरेश त्रिपाठी आदि हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी

आप कविता में अपना नाम 'एक भारतीय आत्मा' लिखते हैं। ये सचमुच

एक भारतीय आत्मा रखते हैं। आप की कविता में राष्ट्रीय भावों की एक विशेष झलक मिलती है। आप के लिये वीर वह है जो शत्रु के सामने अपने जीवन को बलिदान कर दे। शत्रु को मारना पाप है। यही आधुनिक गांधीयुग का संदेश है। महात्मा गांधी ने अहिंसा के आदर्श के अनुसार लोगों के दिल में वीरता के नये भाव भर दिये हैं।

नवीन

श्री बालकृष्ण 'नवीन' की कविताओं में से वीरता के भाव छलक-छलक कर बाहर आते हैं। उन में अनोखी मादकता है, उन्माद है और पीड़ा है। आप हलचल, उथल-पुथल और क्रांति के पुजारी है। आप की कामना है कि इस संसार को तोड़ फोड़ कर अपने हृदय के अनुसार एक नया संसार बनाया जाय। 'विप्लव गायन' में नवीन इस संसार को मिटाने की एक तीव्र और भीषण कल्पना करते हैं।

रामनरेश त्रिपाठी

आप पर महात्मा गांधी के अहिंसावाद का विशेष प्रभाव पड़ा है। आप ने कविताओं के कथानक के रूप में इस आदर्श को भली भाँति साफ दिखाया है। आप की कविता में असहयोग आन्दोलन की झलक दीख पड़ती है। यह राष्ट्र-वाद का चौथा युग है। राष्ट्रीय या वीर कविता की धारा चन्द-युग, भूषण-युग, गुप्त-युग और गांधी-युग से बहती हुई यहाँ पर विश्राम करती है। इस के आगे इस का क्या रूप होगा, अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जासकता। कुछ फुटकर कवितायें जो आजकल लिखी जा रही हैं साम्यवाद के भावों को प्रकट करती हैं। उन का विषय देहात है, किसानों की गरीबी है, उन की भूख और तड़प है और अमीरों का विलासपूर्ण जीवन है।

रहस्यवाद

कबीरदास

साखी

कहना था सो कह दिया अब कछु कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया दरिया लहर समाय॥

आया था संसार में देखन को बहु रूप।
कहै कबीरा संत हो परि गया नजर अनूप॥

आतम अनुभव ज्ञान की जो कोइ पूछै बात।
सो गूँगा गुड़ खाइ कै कहै कौन मुख स्वाद॥

लिखा लिखी की है नहीं देखा-देखी बात।
दुलहा दुलहिन मिल गये फीकी पड़ी बरात॥

छीर रूप सतनाम है नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोइ साध है तत का छाननहार॥

जल में बसै कमोदिनी चंदा बसै अकास।
जो है जाको भावता सो ताही के पास॥

सुमिरन सुरत लगाइ के मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के अंतर के पट खोल॥

माला फेरत जुग भया फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे मन का मनका फेर॥

बिरहिन देय सँदेसरा सुनो हमारे पीव ।
जल बिन मछली क्यों जिए पानी में का जीव ॥

अँखियाँ तो झाँई परी पंथ निहार निहार ।
जीहड़िया छाला परा नाम पुकार पुकार ॥

नैनन तो झरि लाइया रहट बहै निसु बास ।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै पिया मिलन की आस ॥

बहुत दिनन की जोवती रटत तुम्हारो नाम ।
जिव तरसै तुव मिलन को मन नाहीं बिश्राम ॥

कै बिरहिन को मीच दे कै आपा दिखलाय ।
आठ पहर का दाझना मो पै सहा न जाय ॥

बिरह कमंडल कर लिए बैरागी दो नैन ।
माँगैं दरस मधूकरी छके रहैं दिन रैन ॥

येहि तन का दिवला करों बाती मेलों जीव ।
लोहू संचों तेल ज्यों कब मुख देखों पीव ॥

हँस हँस कंत न पाइया जिन पाया तिन रोय ।
हाँसी खेले पिय मिलैं कौन दुहागिन होय ॥

अँखियाँ प्रेम बसाइया जनि जाने दुखदाय ।
नाम सनेही कारने रो रो रात बिताय ॥

परबत परबत में फिरी नैन गँवायो रोय ।
सो बूटी पायो नहीं जाते जीवन होय ॥

सबही तरु तर जाइ के सब फल लीन्हों चीख ।
फिरि फिरि माँगत कबिर है दरसन ही की भीख ॥

हिरदे भीतर दव बलै धुँआ न परगट होय ।
जाके लागी सो लखै की जिन लाई सोय ॥

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ॥

चलन चलन सब कोइ कहै मोहि अँदेसा और ।
साहेब सों परिचय नहीं पहुँचैंगे केहि ठौर ॥

हंसा बगुला एक सा मानसरोवर माहिं ।
बगा ढँढोरे माछरी हंसा मोती खाहिं ॥

सत्त नाम कडुवा लगे मीठा लागै दाम ।
दुबिधा में दोऊ गये, माया मिली न राम ॥

पानी मिलै न आप को औरन बकसत छीर ।
आपन मन निसचल नहीं और बँधावत धीर ॥

सब धरती कागद करूँ लेखनि सब बनराय ।
सात समुँद की मसि करूँ गुरु गुन लिखा न जाय ॥

पंडित पढ़ि गुन पचि मुये गुरु बिन मिलै न ज्ञान ।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है सत्त सब्द परमान ॥

सिंहों के लेहँड़ नहीं हंसों की नहिं पाँत ।
लालों की नहिं बोरियाँ साध न चलैं जमात ॥

साध कहावन कठिन है लंबा पेड़ खजूर ।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस गिरै तो चकना चूर ॥

मूँड़ मुड़ाए हरि मिलैं सब कोइ लेहि मुँड़ाय ।
बार बार के मूँड़ने भेड़ न बैकुंठ जाय ॥

पानी केरा बुदबुदा अस मानुष की जात ।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात ॥

भँवर बिलंबे बाग में बहु फूलन की आस ।
जीव बिलंबे विषय में अंतहु चले निरास ॥

चलती चक्की देखि के दिया कबीरा रोय ।
दुइ पट भीतर आइ के साबित गया न कोय ॥

माली आवत देखि के कलियाँ करैं पुकार ।
फूली फूली चुनि लिए कालिह हमारी बार ॥

पात झरंता यों कहै सुनु तरवर बनराय ।
अब के बिछुरे ना मिलैं दूर परैंगे जाय ॥

कबिरा जंत्र न बाजई टूटि गया सब तार ।
जंत्र बिचारा क्या करै चला बजावन हार ॥

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजों आपना मुझ सा बुरा न होय ॥

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदे साँच है ता हिरदे गुरु आप ॥

जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौर।
सहजै हीरा नीपजै जो मन आवे ठौर ॥

मन के बहुतक रंग हैं छिन छिन बदलैं सोय।
एकै रंग में जो रहै ऐसा बिरला कोय ॥

मन के हारे हार है मन के जीते जीत ।
कह कबीर पिउ पाइए मनहीं की परतीत ॥

सुपने में साँई मिले सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता मत सुपना ह्वै जाय ॥

सोऊँ तो सुपने मिलूँ जागूँ तो मन माहिं।
लोचन राते सुभ घड़ी बिसरत कबहूँ नाहिं ॥

लंबा मारग दूर घर बिकट पंथ बहु भार।
कह कबीर कस पाइए दुर्लभ गुरु दीदार ॥

देह धरे का दंड है सब काहू को होय ।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि मूरख भुगतै रोय ॥

पद

धूँघट को पट खोल रे तोको पीव मिलैंगे।
घट घट मैं वह साँई रमता कटुक बचन मत बोल रे।
धन जोबन को गरब न कीजै झूठा पँचरँग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारि ले आसा सों मत डोल रे।
जोग जुगत सों रंग-महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहैं कबीर अनंद भयो है बाजत अनहद ढोल रे।

मिलना कठिन है, कैसे मिलौंगी पिय जाय।
समुझि सोच पग धरौं जतन से बार बार डिग जाय।
ऊँची गैल राह रपटीली पाँव नहीं ठहराय।
लोक-लाज कुल की मरजादा देखत मन सकुचाय।
नैहर बास बसा पीहर में लाज तजी नहिं जाय।
अधर भूमि जहँ महल पिया का हम पै चढ़ो न जाय।
धन भई बारी पुरुख भए भोला सुरत झकोरा खाय।
दूती सतगुरु मिले बीच में दीन्हों भेद बताय।
साहब कबिरा पिया सों भेंट्यो सीतल कंठ लगाय॥

प्रीत लगी तुम्र नाम की पल बिसरै नाहीं।
नजर करो अब मेहर की मोहिं मिलो गुसाईं॥
बिरह सतावे मोहि को जिव तड़पै मेरा।
तुम देखन की चाव है प्रभु मिलो सबेरा॥
नैन तरसे दरस को पल पलक न लागै।
दरद बंद दीदार का निस बासर जागै॥
जो अब प्रीतम मिलै करूँ निमिख न न्यारा।
अब कबीर गुरु पाइया मिला प्रान प्यारा॥

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिए कर डोलै बोलै मधुरी बानी॥

केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ में भइ पानी ॥
योगी के योगिनि ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहु के कौड़ी कानी ॥
भक्तन के भक्तिनि ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी ॥

मेरा तेरा मनुआँ कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी ॥
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाई रे।
मैं कहता तू जागत रहियो तू रहता है सोइ रे ॥
मैं कहता निरमोही रहियो तू जाता है मोहि रे।
जुगन जुगन समझावत हारा कहा न मानत कोइ रे ॥
सतगुरु धारा निरमल बाहै वा में काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो तबही वैसा होइ रे ॥

पानी बिच मीन पियासी, मोहिं सुन सुन आवत हाँसी।
आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी ॥
घर में वस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजत जासी ॥
मृग की नाभि माहिं कस्तूरी, बन बन खोजत जासी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सहज मिलै अबिनासी ॥

गुरु नानक

काहे रे वन खोजन जाई !
सरब निवासी सदा अलेपा,
तोही संग समाई ॥
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है,
मुकर माहिं जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरंतर,
घटै ही खोजौ भाई ॥
बाहर भीतर एकै जानों,
यह गुरु ग्यान बताई ।
जन नानक बिन आपा चीन्हे,
मिटै न भ्रम की काई ॥

हौं कुरबाने जाउँ पियारे, हौं कुरबाने जाउँ ॥
हौं कुरबाने जाउँ तिन्हाँदे, लैन जो तेरा नाउँ।
लैन जो तेरा नाउँ तिन्हाँ दे, हौं सद कुरबाने जाउँ।
काया रँगन जे थिये प्यारे, पाइये नाऊँ मजीठ।
रंगनवाला जे रँगे साहिब, ऐसा रंग न डीठ ॥
जिनके चोलड़े रत्तड़े प्यारे, कंत तिन्हाँ दे पास।
धूड़ तिन्हाँ को जे मिले जाको, नानक दी अरदास ॥

मलिक मुहम्मद जायसी

प्रेम-पाश

सुनि रवि-नावँ रतन भा राता। पंडित फेरि उहै कहु बाता॥
तैं सुरंग मूरति वह कही। चित महँ लागि चित्र होइ रही॥
जनु होइ सरुज आइ मन बसी। सब घट पूरि हिये परगसी॥
अब हौं सुरुज, चाँद वह छाया। जल बिनु मीन, रकत बिनु काया॥
किरिन-करा भा प्रेम-अँकूरू। जौं ससि सरग, मिलौं होइ सूरू॥
सहसौ करा रूप मन भूला। जहँ जहँ दीठ कवँल जनु फूला॥

तीनि लोक चौदह खँड सबै परै मोहिं सूझि।
पेम छाँडि नहिं लोन किछु, जो देखा मन बूझि॥

पेम सुनत मन भूल न राजा। कठिन पेम, सिर देइ तौ छाजा॥
पेम-फाँद जो परा न छूटा। जीउ दीन्ह पै फाँद न टूटा॥
गिरगिट छंद धरै दुख तेता। खन खन पीत, रात, खन सेता॥
जान पुछार जो भा बनबासी। रोंव रोंव परे फँद नगवासी॥
पाँखन्ह फिरि फिरि परा सो फाँदू। उड़ि न सकै, अरुझा भा बाँदू॥
'मुयों मुयों' अहनिसि चिल्लाई। ओही रोस नागन्ह धै खाई॥
पंडुक, सुआ, कंक वह चीन्हा। जेहिं गिउ परा चाहि जिउ दीन्हा॥

तीतिर—गिउ जो फाँद है, निति पुकारै दोख।
सो कित हँकारि फाँद गिउ (मेलै) कित मारे होइ मोख॥
राजै लीन्ह ऊबि कै साँसा। ऐस बोल जिनि बोलु निरासा॥
भलेहि पेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा पेम जेइ खेला॥
दुख भीतर जो पेम–मधु राखा। जग नहिं मरन सहै जो चाखा॥
जो नहिं सीस पेम—पथ लावा। सो प्रिथिमी महँ काहे क आवा ?॥
अब मैं पेम-पंथ सिर मेला। पाँव न ठेलु, राखु कै चेला॥
पेम-बार सो कहै जो देखा। जो न देख, का जान विसेखा॥
तौ लगि दुख पीतम नहिं भेंटा। मिलै, तौ जाइ जनम-दुख मेटा॥
जस अनूप, तू बरनेसि, नख सिख बरनु सिंगार।
है मोहिं आस मिलै कै, जौं मेरवै करतार॥

———

जयशंकर 'प्रसाद'

विश्व के नीरव निर्जन में

जब करता हूँ केवल, चंचल मानस को कुछ शांत,
होती है कुछ ऐसी हलचल तब होता है भ्रांत;
भटकता है भ्रम के वन में
विश्व के कुसुमित कानन में।

जब लेता हूँ आभारी हो बल्लरियों से दान,
कलियों की माला बन जाती अलियों का हो गान,
बिकलता बढ़ती हिमकन में,
विश्वपति तेरे आँगन में।

जब करता हूँ कभी प्रार्थना कर संकलित विचार,
तभी कामना के कंकण की हो जाती झनकार,
चमत्कृत होता हूँ मन में,
विश्व के नीरव निर्जन में।

पी ! कहाँ ?

डाल पर बोलता है पपीहा—
हो भला प्राणधन, तुम कहाँ ?—हा !
आ मिलो हो जहाँ।
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?

प्यास से मर रहे दीन चातक
क्यों बना चाहते प्राण-घातक ?
श्याम-घन ! हो कहाँ ?
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?

नभ-हृदय में घिरी मेघमाला।
चंचला कर रही है उजाला ॥
देख लूँ, हो कहाँ ?
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?

जलमयी हो रही यह धरा है।
कंठ फिर भी न होता हरा है ॥
प्यास में जल रहा।
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?

प्यास कैसी तुम्हारी ? पपीहा !
कम न होकर बढ़ी जा रही हा !
लो, वही कह रहा—
पी ! कहाँ ? पी ! कहाँ ?

हृदय का सौंदर्य

नदी की विस्तृत वेला शांत,
अरुण मंडल का स्वर्ण विलास,
निशा का नीरव चंद्र-विनोद,
कुसुम का हँसते हुए-विकास।

एक से एक मनोहर दृश्य,
प्रकृति की क्रीड़ा के सब छंद,
सृष्टि में सब कुछ है अभिराम,
सभी में है उन्नति या ह्रास।

बना लो अपना हृदय प्रशांत,
तनिक तब देखो वह सौंदर्य,
चंद्रिका से उज्वल आलोक,
मल्लिका सा मोहन मृदुहास।

अरुण हो सकल विश्व अनुराग,
करुण हो निर्दय मानव चित्त,
उठे मधुलहरी मानस में,
कूल पर मलयज का हो वास।

वसंत

तू आता है, फिर जाता है ।
जीवन में पुलकित प्रणय सदृश,
यौवन की पहली कांति अकृश
जैसी हो, वह तू पाता है, हे बसंत! तू क्यों आता है ?
पिक अपनी कूक सुनाता है,
तू आता है फिर जाता है ।

बस, खुले हृदय से करुण कथा,
बीती बातें कुछ मर्म व्यथा,
वह डाल-डाल पर जाता है, फिर ताल ताल पर गाता है ।
मलयज मंथर गति आता है,
तू आता है फिर जाता है ।

जीवन की सुख दुख आशा सब,
पतझड़ हो पूर्ण हुई है अब,
विकसित रसाल मुसक्याता है, कर किसलय हिला बुलाता है ।
हे बसंत! क्यों तू आता है ?
तू आता है फिर जाता है ।

सुमित्रानंदन पंत

छाया

कहो कौन हो दमयंती-सी तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या अलि ! नल-सा निष्ठुर कोई
पीले पत्रों की शय्या पर तुम विरक्ति-सी मूर्छा-सी
विजन विपिन में कौन पड़ी हो विरह-मलिन दुख-विधुरा-सी ?

× × × ×

पछतावे की परछाईं-सी तुम भूपर छाई हो कौन ?
दुर्बलता-सी, अँगड़ाई सी, अपराधी-सी, भय से मौन,
निर्जनता के मानस-पट पर बार बार भर ठंडी साँस
क्या तुम छिपकर क्रूर काल का लिखती हो अकरुण इतिहास ?

× × × ×

कालानिल की कुंचित गति में बार बार कंपित होकर
निज जीवन के मलिन पृष्ठ पर नीरव शब्दों में निर्भर
किस रहस्यमय अभिनय की तुम सजनी ! यवनिका हो सुकुमार
इस अभेद्य पट के भीतर है किस विचित्रता का संसार

भग्न भावना विजन वेदना विफल लालसाओं से भर।
किस अतीत का करुण चित्र तुम खींच रही हो कोमलतर!

× × × ×

दिनकर-कुल में दिव्य जन्म पा, बढ़कर नित तरुवर के संग ,
मुरझे पत्रों की साड़ी से ढँककर अपने कोमल अंग;
सदुपदेश-सुमनों से तरु के गूँथ हृदय का सुरभित हार।
पर-सेवा रत रहती हो तुम हरती नित पथ-श्रांति अपार।

× × × ×

हाँ सखि! आओ बाँह खोल तुम लग कर गले जुड़ा ले प्राण
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में हो जावें द्रुत अंतर्धान।

(१)

गाता खग प्रातः उठकर—
सुंदर, सुखमय जग-जीवन!
गाता खग संध्या-तट पर—
मंगल मधुमय जग-जीवन!

कहती अपलक तारावलि
अपनी आँखों का अनुभव,—
अवलोक आँख आँसू की
भर आती आँखें नीरव!

हँसमुख प्रसून सिखलाते
पल भर है, जो हँस पाओ,
अपने उर की सौरभ से
जग का आँगन भर जाओ।

उठ-उठ लहरें कहतीं यह
हम कूल विलोक न पावें,
पर इस उमंग में बह-बह
नित आगे बढ़ती जावें।

कँप-कँप हिलोर रह जाती—रे मिलता नहीं किनारा!
बुद्बुद् विलीन हो चुपके पा जाता आशय सारा।

(२)

मैं नहीं चाहता चिर-सुख,
मैं नहीं चाहता चिर-दुख;
सुख-दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख।

सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरण,
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन।

जग पीड़ित है अति-दुख से,
जग पीड़ित रे अति-सुख से,
मानव-जग में बँट जावें
दुख सुख से औ, सुख दुख से।

अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न;
दुख-सुख की निशा-दिवा में,
सोता-जगता जग जीवन।

यह साँझ-उषा का आँगन, आलिंगन विरह-मिलन का;
चिर हास-अश्रुमय आनन, रे इस मानव-जीवन का!

मौन निमंत्रण

स्तब्ध-ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न-अजान;
न जाने, नक्षत्रों में कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन!

सघन-मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर झरती जब पावस धार;
न जाने, तपक तड़ित में कौन
मुझे इंगित करता तब मौन !

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर-उर के-से मृदु-उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने, सौरभ के मिस कौन
सँदेशा मुझे भेजता मौन !

क्षुब्ध-जल-शिखरों को जब वात
सिंधु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल-संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात;
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता मौन !

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर
विहग-कुल की कल कण्ठ-हिलोर
मिला देती भू-नभ के छोर;
न जाने, अलस-पलक-दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन !

तुमुल-तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु-झींगुर-कुल की झनकार
कँपा देती तंद्रा के तार;
न जाने, खद्योतों से कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन !

कनक-छाया में, जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुंजार;
न जाने ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन !

बिछा कार्यों का गुरुतर-भार
दिवस को दे सुवर्ण-अवसान,
शून्य-शय्या में, भ्रमित-अपार
जुड़ाती जब मैं आकुल प्राण;
न जाने, मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया-जग में मौन !

न जाने कौन, आये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूँक देते छिद्रों में गान;
अहे सुख-दुख के सहचर मौन !
नहीं कह सकती तुम हो कौन !

महादेवी वर्मा

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ।

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!
नींद थी मेरी अचल निस्पंद कण-कण में;
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पंदन में;
प्रलय में मेरा पता पद-चिह्न जीवन में;
शाप हूँ जो बन गया वरदान बंधन में;
कूल भी हूँ, कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ।

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ;
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ;
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ;
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ;
दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ!

आग हूँ जिसके ढुलकते बिंदु हिमजल के;
शून्य हूँ जिसको बिछे है, पाँवडे पल के;
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में;
हूँ वही प्रतिबिंब जो आधार के उर में;
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ!

नाश भी हूँ मैं अनंत विकास का क्रम भी;
त्याग का दिन भी, चरम आसक्ति का तम भी;
तार भी, आघात भी, झंकार की गति भी;
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी;
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

संसार

निश्वासों की नीड़, निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बंदनवार,
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आँसू से लिख लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार!

हँस देता जब प्रात सुनहरे
अँचल में बिखरा रोली,
लहरों की बिछलन पर जब
मचलीं पड़ती किरणें भोली
तब कलियाँ चुपचाप उठा कर पल्लव के घूँघट सुकुमार,
छलकी पलकों से कहती हैं 'कितना मादक है संसार'!

देकर सौरभ दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल,
'जिसके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल ?

'अब इनमें क्या सार' मधुर जब गाती भौंरों की गुंजार,
मर्मर का रोदन कहता है 'कितना निष्ठुर है संसार !'

स्वर्णवर्ण से दिन लिख जाता
जब अपने जीवन की हार,
गोधूली नभ के आँगन में
देती अगणित दीपक बार,

हँस कर तब उस पार तिमिर का कहता बढ़ बढ़ पारावार
"बीते युग, पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार !"

स्वप्न लोक के फूलों से कर
अपने जीवन का निर्माण,
'अमर हमारा राज्य' सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण,
आकर तब अज्ञात देश से जाने किसकी मृदु झंकार,
गा जाती है करुण स्वरों में 'कितना पागल है संसार !'

अनंत की ओर

गरजता सागर तम है घोर
घटा घिर आई सूना तीर,
अँधेरी सी रजनी में पार
बुलाते हो कैसे बेपीर ?

नहीं है तरिणी कर्णाधार
अपरिचित है वह तेरा देश,
साथ है मेरे निर्मम देव !
एक बस तेरा ही संदेश।

+ + +

हाथ में लेकर जर्जर बीन
इन्हीं बिखरे तारों को जोर,
लिए कैसे पीड़ा का भार
देव आऊँ अनंत की ओर ?

जो तुम आ जाते एक बार !

कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग;
आँसू लेते वे पद पखार !

हँस उठते पल में आर्द्र नैन
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसंत
लुट जाता चिर संचित विराग;

आँखें देती सर्वस्व वार !
जो तुम आ जाते एक बार !

क्यों जग कहता मतवाली !

क्यों न शलभ पर लुट लुट जऊँ
झुलसे पंखों को चुन लाऊँ,
उन पर दीप शिखा अँकवाऊँ,
अलि ! मैंने जलने ही में जब
जीवन की निधि पाली !

क्या अनुनय में अनुहारों में,
क्या आँसू में उद्गारों में,
आवाहन में अभिसारों में,
जब मैंने अपने प्राणों में
प्रिय की छाँह छिपा ली !

भावे क्या अलि! अस्थिर मधुदिन,
दो दिन का मृदु मधुकर गुंजन
पल भर का यह मधु-मद-वितरण
चिर बसंत है मेरे इस
पतझर की डाली डाली—
जो न हृदय अपना बिंधवाऊँ
निश्वासों के तार बनाऊँ,
तो कह किस का हार बनाऊँ!
तारों ने वह दृष्टि कली ने
उन की हँसी चुरा ली!

मैंने कब देखी मधुशाला?
कब माँगा मरकत का प्याला?
कब छलकी विद्रुम सी हाला?
मैंने तो उन की स्मित में
केवल आँखें धो डालीं!
क्यों जग कहता मतवाली?

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

तुम और मैं

तुम तुंग हिमालय शृंग, और मैं चंचल गति सुरसरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास, और मैं कांति-कामिनी कविता॥
तुम प्रेम और मैं शांति।
तुम सुरापान घन अंधकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रांति।

तुम दिनकर के खर किरण-जाल, मैं सरसिज की मुसकान।
तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूँ पिछली पहचान॥
तुम योग और मैं सिद्धि।
तुम हो रामानुज निश्चल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि!

तुम मृदु मानस के भाव, और मैं मनोरंजिनी भाषा।
तुम नंदन-वन-घन-विटप, और मैं सुख-शीतल-तल-शाखा॥
तुम प्राण और मैं काया
तुम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म,
मैं मनमोहिनी माया।

तुम प्रेममयी के कंठ-हार, मैं वेणी काल-नागिनी ।
तुम कर पल्लव-झंकृत सितार, मैं व्याकुल विरह-रागिनी ।।
तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु,
तुम हो राधा के मनमोहन,
मैं उन अधरों की वेणु ।

तुम पथिक दूर के श्रांत, और मैं बाट जोहती आशा ।
तुम भवसागर दुस्तार, पार जाने की मैं अभिलाषा ।।
तुम नभ हो, मैं नीलिमा,
तुम शरद्-काल के बाल-इंदु
मैं हूँ निशीथ-मधुरिमा ।

तुम गंध-कुसुम कोमल पराग, मैं मृदु गति मलय-समीर ।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति-प्रेम-जंजीर ।।
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति,
तुम रघुकुल गौरव रामचंद्र,
मैं सीता अचला भक्ति ।।

तुम हो प्रियतम मधुमास, और मैं पिक-कल-कूजन तान ।
तुम मदन पंचशर हस्त, और मैं हूँ मुग्धा अनजान ।।
तुम अम्बर, मैं दिग्वसना,
तुम चित्रकार घन-पटल श्याम ।
मैं तड़ित्तूलिका-रचना ।।

तुम रण-ताण्डव उन्माद नृत्य, मैं युवति मधुर-नूपुर ध्वनि।
तुम नाद वेद ओंकार सार, मैं कवि श्रृंगार-शिरोमणि ॥
तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति,
तुम कुंद-इंदु-अरविंद शुभ्र,
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

खेवा

डोलती नाव, प्रखर है धार,
सँभालो जीवन-खेवनहार!

तिर-तिर फिर-फिर
प्रबल तरंगों में घिरती है,

डोले पग जल पर
डगमग—डगमग फिरती है,

टूट गई पतवार,
जीवन खेवनहार!

भय में हूँ तन्मय
थरथर कंपन तन्मयता
छन छन में
बढ़ती ही जाती है अतिशयता
पारावार अपार
जीवन खेवनहार!

रामकुमार वर्मा

(१)

समीरण धीरे से बह जाओ।
मैं क्या हूँ, इन कलियों के
कानों में यह कह जाओ॥

वे विकसित होकर जग को
देंगी सुख सौरभ भार,
किरणें हिम-कण के भीतर
होंगी ज्योतित सुकुमार,
तृण तृण ले लेंगे उज्ज्वलता
का नूतन परिधान,
विहगों को होगा अपने
मधुमय कंठों का ज्ञान,
इस जीवन में साँस-रूप हो
कुछ क्षण को रह जाओ।
समीरण, धीरे से बह जाओ॥

(२)

मेरा देखोगे अभिनय ?
प्रिय, देखो मेरे मन में
कितनी पीड़ा ! कितना भय !!
कितने जीवन से करता—
आया प्राणों का संचय।
पर अभी न हो पाया है
अपने प्रियतम से परिचय ॥
मेरे हावों में कंपन—
भावों में कितना संशय।
क्या दिखला दोगे मुझको
मेरे जीवन का अभिनय ?

(३)

आओ, मेरे सुंदर वन में।
मैं कलिका हूँ, खिल जाऊँगी
अभी तुम्हारे मृदु गुंजन में ॥ आओ० ॥
उषा लिए है कितनी ज्वाला !
भू पर है ओसों की माला,
इन दोनों की छाया है—
मेरे नव विकसित कोमल तन में ॥ आओ०

रूप-गंध का पीकर प्याला,
भूल रही है तितली-बाला,
मैं तो लीन हो रही हूँ—
अ-मलीन तुम्हारे अभिनंदन में।
आओ, मेरे सुंदर वन में॥

जीवन का अन्त

मैं तुम से मिल गया प्रिये!
यह है जीवन का अंत।
इसी मिलन का गीत कोकिले!
गा जीवन पर्यंत।
सुमन मधुप को बुला-बुला कर,
देंगे यह संवाद;
कलियाँ कल जागेंगी लेकर,
इसी मिलन की याद।
प्राची के बिखरे सब बादल,
बदल-बदल कर रूप,
किरण-साँस में बतला देंगे,
मेरा मिलन अनूप।
इस संसार विवर में है
अति लघु प्राणों का वास;
सुख-दुख के दो कोण,
उन्हीं में रुदन और है हास।

इसके परिमित पल में है--
इस जीवन का उपहास;
एक दृष्टि में जन्म, दूसरी--
में है करुण प्रवास।

यह संसार शिशिर है--
तुम हो विश्वाकार वसंत।
मैं तुमसे मिल गया प्रिये।
यह है यात्रा का अंत।

किरण-कण

एक दीपक-किरण-कण हूँ।
धूम्र जिसके क्रोड़ में है,
उस अनल का हाथ हूँ मैं;
नव-प्रभा लेकर चला हूँ,
पर जलन के साथ हूँ मैं।
सिद्धि पाकर भी तपस्या-
साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
एक दीपक-किरण कण हूँ।

व्योम के उर में अगाध
भरा हुआ है जो अँधेरा,
और जिसने विश्व को दो
बार क्या, सौ बार घेरा,

उस तिमिर का नाश करने
के लिए मैं अखिल प्रण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

शलभ को अमरत्व देकर
प्रेम पर मरना सिखाया,
सूर्य का संदेश लेकर
रात्रि के उर में समाया,
पर तुम्हारा स्नेह खोकर
भी तुम्हारी ही शरण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद'

तीन कलाधर

अंधा-गायक

नीरव खँजरी लिए गोद में
तुम उस राह-किनारे,
तरु के तले टाट पर बैठे
रहते हो मन मारे।

सहसा कभी नाच उठती हैं
आते ही प्रियतम की याद—
खँजरी पर उँगलियाँ, कंठ में
तानें, ओठों पर आह्लाद।

नभ की ओर उठाकर जब ये
पलकें 'पुतली'—हीन,
आत्म-निवेदन सा करते हो
होकर तुम तल्लीन

उमड़-उमड़ पड़ते हैं स्वर से
प्राणों के मद के प्याले,
ठिठक बटोही चित्र-लिखे से
रह जाते सुनने वाले।

केवल तुम्हीं देख पाते हो
उर की आँखों से उर में,
स्वर की नभ-चुंबी डोरों से
उतर समुद अन्तःपुर में।

कितनी सुरभि, सुधा-मधु कितना,
कितनी छवि, कितना संगीत,
कितना सुख, कितनी मादकता,
कितना स्नेह, प्रकाश, प्रतीति,

इन छोटे से प्राणों में 'प्रिय'
एक साथ भर जाते हैं।
तरु के तले बटोही केवल
एक गान सुन पाते हैं।

त्रिभुवन का आलोक तुम्हारे
अंतर में भर जाता है।
अतः बाहरी जग में तुमको
तिमिर शेष रह जाना है।

मूक चित्रकार

ऊषा, तारिका, इंद्र-धनुष में,
नीरव लहराते जल में,
कहता है कुछ चंद्र-किरण में,
कुछ नभ-में कुछ बादल में।

फूलों के रंगीन मौन में
मंद स्मित भाषा बन कर,
उर के अनुभव-सा धीरे से
खिलता है जो चिर-सुंदर।

उसी भुवन-नायक की भाषा
मौन, तुम्हारी है भाषा,
तुम रंगीन विश्व के राजा
नीरव जगती की आशा।

नयनों के नन्दन-वन में,
हे चित्रकार, भरमा कर
रख लेते हो त्रिभुवन की
भाषा को मूक बना कर।

जहाँ नहीं झंकार स्वरों की,
शब्दों का विस्तार नहीं;
रंगों का संसार नहीं,
रेखाओं का आकार नहीं।

वहीं उन्हीं नयनों में छवि बन
हो उठता है व्यक्त अजान,
यह युग-युग का मूक हृदय,
ये जन्म जन्म के नीरव प्राण।

पट पर तो कभी-कभी तुम
कर पाते हो छवि-अंकन,
छवि ही बन गया तुम्हारा
पलकों में सारा जीवन।

'अनुभूति' न तुम खोते हो
कहने सुनने में सारी,
बस हृदय समझ लेता है
भाषा रंगीन तुम्हारी।

कब 'अपनी बात' तुम्हारी
रख पाता 'मौन' छिपाकर!
कर देते व्यक्त 'हृदय' तुम
पुतली में चित्र बना कर।

बधिर कवि

भ्रांत बना रहता श्रवणों के
कारण यह जग सारा है,
श्रवण शून्यता ही साधक का
सब से सरस सहारा है।

श्रवण मूँद, तन्मय हो, विधि ने
किया एक सौंदर्य-सृजन,
वही विकल वसुधा पर उतरा
मधुमय हृदय तुम्हारा बन।

उस तल्लीन साधना को ले
जब से विधि से तुम ने दान,
इस अनंत अज्ञात पंथ पर
प्रथम चरण रख दिया अजान।

जीवन में सौंदर्य-पिपासा,
प्राणों में अक्षय संगीत,
उर में युग-निर्माण-भावना।
नयनों में आदर्श पुनीत।

अधरों में मधु लिए चले
जाते हो हर्षोत्फुल्ल बदन,
'अलख'-लोक-वासी प्रिय के
पुर के पथ पर अविरत प्रतिक्षण।

विधि-निषेध के बंधन, जग के
व्यंग कहाँ, उपहास कहाँ,
'तानों' की ताने सुनने का
समय कहाँ, अवकाश कहाँ ?

निज पथ पर चलते रहते हो
मिला तुम्हें गति का 'निर्वाण'
दूर देश के अथक पथिक हे
हे कवि, हे अद्भुत, अनजान।

पदक्षेप में अगणित त्रुटियाँ
गिनते रहते हैं रज-कण,
पर तुम चलते ही जाते हो
पथ पर पागल से प्रतिक्षण।

जग के कलुषित कोलाहल में
सदा सुरक्षित है 'सुंदर',
श्रवणों पर पट डाल, हृदय में,
छिपा रखा प्रियतम का स्वर।

वही अमर स्वर गूँज रहा है
आदि काल से प्राणों में,
अतः 'शून्य' अनुभव करते हो
मर्त्य जगत के गानों में।

हरिकृष्ण प्रेमी

(जादूगरनी)

जब तू बनती है तूफ़ान,

विश्व-रूप-सागर ! सुंदरि, जब
प्रबल हिलोरें लेती है,
कितनी जीवन-नौकाओं को
तू चंचल कर देती है।

पूर्णचंद्र सा प्रेम, गगन में चमक,
उठाता उर में ज्वार,
तब अभिलाषाओं की लहरें
करतीं कितना हाहाकार।

यह अभेद्य गहराई उर की।
प्रबल तरंगें, यह विस्तार !
चिर-जिज्ञासा के लोचन भी
पा न सके हैं तेरा पार।

कितने पोत भंग कर देती
तेरी केवल एक तरंग ।
आशाओं के भवन टूट कर
बह आते बालू-से संग ।

अन्धकार-से, लहरों-से जब
बालों को लहराती है ।
राह भूल, अन्धी हो दुनिया,
उलझन में फँस जाती है ।

तुझे हृदय में विश्व बाँध कर
रखने की करता है चाह,
पर, तेरी अनन्त लहरों की
कौन रोक सकता है राह ।

आशाओं के मेरु एक पल में
तू तोड़ गिराती है ।
अपने एक हृदय-कम्पन से
जग में प्रलय मचाती है ।
जब तू बनती है तूफान ॥

———

आँखों में

किस के अंतस्तल में भर दूँ
अपनी आँखों का संदेश ?
किस ने इस जग में देखा है
मेरे प्रियतम का शुभ देश ?

× × ×

इन पापिन आँखों ने तुम को-
यदि न कभी देखा होता।
तो, मेरी फूटी किस्मत में—
कुछ सुख का लेखा होता।

× × ×

अंतरिक्ष से, जल थल से, क्यों-
सारा प्रेम समेट समेट—
इस प्रेमी ने तुझ अभिमानी—
प्रियतम को कर डाला भेंट ?

× × ×

आँखों में मैं दीप छिपा कर,
तुम्हें खोजने जाता हूँ।
कहीं फूँक कर बुझा न दो तुम!
मन-ही-मन भय खाता हूँ!

× × ×

पत्थर के टुकड़ों में भी तो
मिलता प्रियतम का आभास !
उठा हृदय पर रख लेता हूँ
करता रहे जगत उपहास !

× × ×

आज पूछती प्रियतम की स्मृति-
"किस का, किस पर, क्या अधिकार!"
हाय, हृदय भोला-सा मेरा ?
पाए वाणी कहाँ उधार !

× × ×

मत पूछो मुझ से कोई—
क्या प्रियतम पर मेरा अधिकार !
जा कर सुनो पूर्णिमा के दिन-
सागर के चञ्चल उद्गार !

× × ×

तुम से-मिलन कल्पना ने ही
मेरी नस नस को कीला !
आँखों में आँसू-भर भर कर
रखते घावों को गीला !

× × ×

आँखों में है आँख मिचौनी,
पीड़ा की–सुख की भोली !
कोई छिपे-छिपे भर देता
दुख से प्रेमी की झोली।

× × ×

आँखों में प्यारे दर्शन हैं,
अंकित है पहली तस्वीर
भले मिटाओ, पर न मिटेगी
यह पत्थर की अमिट लकीर !

× × ×

पर यह व्यर्थ सांत्वना मन की,
आँखों में है, तो क्या है ?
हाँ, प्रत्यक्ष तुम्हें पाऊँ, तो,
समझूँ तुम को पाया है।

× × ×

अच्छा है उन की निष्ठुरता-
अमर रहे मेरी पीड़ा।
करते रहें अधूरे आँसू
आँखों में असफल क्रीड़ा !

———

रामधारी सिंह 'दिनकर'

परिचय

सलिल-कण हूँ कि पारावार हूँ मैं,
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूँ मैं।
बँधा हूँ, स्वप्न है, छोटा बना हूँ,
नहीं तो व्योम का विस्तार हूँ मैं।

समाना चाहती जो बीन-उर में,
विकल उस शून्य की झंकार हूँ मैं।
भटकता खोजता हूँ ज्योति तम में,
सुना है, ज्योति का आगार हूँ मैं।

जिसे निशि खोजती तारे जलाकर,
उसी का कर रहा अभिसार हूँ मैं।
जनम कर मर चुका सौ बार लेकिन
अगम का पा सका क्या पार हूँ मैं?

कली की पंखुड़ी पर ओस-कण में,
रँगीले स्वप्न का संसार हूँ मैं।
मुझे क्या आज ही या कल झड़ूँ मैं,
सुमन हूँ, एक लघु उपहार हूँ मैं।

जलन, हूँ, दर्द हूँ, दिल की कसक हूँ,
किसी का हाय, खोया प्यार हूँ मैं।
गिरा हूँ भूमि पर नन्दन-विपिन से,
अमर-तरु का सुमन सुकुमार हूँ मैं।

मधुर जीवन हुआ कुछ प्राण ! जब से,
लगा ढोने व्यथा का भार हूँ मैं।
रुदन ही एक पथ प्रिय का, इसी से,
पिरोता आँसुओं का हार हूँ मैं।

मुझे क्या गर्व हो अपनी विभा का ?
चिता का धूलि-कण हूँ, क्षार हूँ मैं।
पता मेरा तुम्हें मिट्टी कहेगी,
समा जिसमें चुका सौ बार हूँ मैं।

न देखे विश्व पर मुझको घृणा से,
मनुज हूँ, सृष्टि का शृंगार हूँ मैं।
पुजारिन ! धूलि से मुझको उठा ले,
तुम्हारे देवता का हार हूँ मैं !

सुनूँ क्या सिन्धु ! मैं गर्जन तुम्हारा ?
स्वयं युग-धर्म का हुंकार हूँ मैं।
कठिन निर्घोष हूँ भीषण अशनि का,
प्रलय-गाण्डीव की टंकार हूँ मैं।

दबी-सी आग हूँ भीषण क्षुधा की,
दलित का मौन हाहाकार हूँ मैं।
सजग, संसार तू निज को सँभाले,
प्रलय का क्षुब्ध पारावार हूँ मैं।

बँधा तूफान हूँ, चलना मना है,
बँधी उद्दाम निर्झर धार हूँ मैं।
कहूँ क्या कौन हूँ ? क्या आग मेरी ?
बँधी है लेखनी, लाचार हूँ मैं।

भक्ति काव्य

मीरा

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकट मेरो पति सोई॥
तात मात भ्रात बंधु आपनो न कोई।
छाँड़ि दई कुल की कानि काह करिहै कोई॥
संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई।
चुनरी के किये टूक-टूक आप लीन्ह लोई।
मोति मूंगे उतार बन-माल पोई॥
अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेलि फैलि गई आंनद फल होई॥
भगति देखि राजि हुई जगत देख रोई॥
दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोही॥

म्हारो जनम मरण को साथी,
थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ़-चढ़ पंथ निहारूँ रोय-रोय अँखियाँ राती।

योे संसार सकल जग झूठो, झूँठा कुलरा नाती।
दोउ कर जोड़याँ अरज करतहूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ा कुचाली, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सतगुर दस्त धरयो सिर ऊपर, आँकुस दे समझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती॥

हे री मैं तो दरद दिवाणी,
मेरा दरद न जाणै कोई।
घाइल की गति घायल जाणै, की जिण लाई होइ।
जौहरि की गति जौहरी जाणें, की जिन जौहर होइ।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विध होइ।
गगन मँडल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होइ।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नहिं कोइ।
मीरा की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सँवलिया होइ।

बसौ मेरे नैनन में नँदलाल
मोहनि मूरति साँवरि सूरत, नैना बने बिसाल
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर-सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भगत बछल गोपाल।

सूरदास

चरण कमल बंदौं हरि राई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अँधरे को सब कुछ दरसाई ।।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई ।
सूरदास स्वामी करुणामय बार बार बंदौं तेहि पाई ।।

जैसे राखहु वैसेहि रहौं ।
जानत दुख सुख सब जनके तुम मुखतें कहाँ कहौं ।।
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कब हूँ भूख सहौं ।
कबहुँक चढ़ौं तुरंग महागज, कबहुँक भार बहौं ।।
कमलनयन घनश्याम मनोहर, अनुचर भयो रहौं ।
सूरदास प्रभु भक्त कृपानिधि, तुम्हरे चरन गहौं ।।

सुनेरी मैंने निर्बल के बल राम ।
पिछली साख भरूँ संतन की आडे सँवारे काम ।।
जब लग गज बल अपनो बरत्यो नेक सरो नहिं काम ।
निर्बल ह्वै बल राम पुकारयो आये आधे नाम ।।
द्रुपदसुता निर्बल भइ तादिन गहलाये निज धाम ।
दुःशासन की भुजा थकित भई वसन रूप भये श्याम ।।

अपबल तपबल और बाहुबल चौथा है बल दाम।
सूर किशोर कृपा से सब बल हारे को हरिनाम॥

हम भक्तन के, भक्त हमारे।
सुन अर्जुन, परतिज्ञा मेरी, यह व्रत टरत न टारे॥
भक्तै काज लाज हिय धरिकै, पाई पयादे धाऊँ।
जहँ जहँ भीर परै भक्तन पै, तहँ तहँ जाई छुड़ाऊँ॥
जो मम भक्त सों बैर करत है, सो निज बैरी मेरो।
देखि बिचारि भक्त हितकारन हाँकत हौं रथ तेरो॥
जीते जीत भक्त अपने की हारे हार बिचारौं।
सूरदास सुनि भक्त विरोधी चक्र सुदर्शन जारौं॥

अबकी टेक हमारी। लाज राखो गिरिधारी॥
जैसी लाज राखी अर्जुन की भारत युद्ध मँझारी।
सारथि हो के रथ को हाँको चक्रसुदर्शनधारी॥
भक्तन की टेक न टारी॥
जैसी लाज राखी द्रौपदी की होन न दीनि उघारी।
खैंचत खैंचत दो भुज थाके दुःशासन पच हारी॥
चीर बढायो मुरारी॥
सूरदास की लाज राखो, अब को है रखवारी ?
राधे राधे श्रीवर प्यारो श्रीवृषभानदुलारी।
शरण तक आयो तुम्हारी॥

प्रभु मोरे अवगुण चित्त न धरो।
समदरशी है नाम तिहारो, चाहे तो पार करो॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलो हि नीर भरो।
जब मिल करके एक बरन भये सुरसरि नाम पर्यो॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक पर्यो।
पारस गुण अवगुण नहिं चितवत, कंचन करत खरो॥
यह माया भ्रमजाल कहावत सूरदास सगरो।
अबकी बेर मोहिं पार उतारो नहीं प्रन जात टरो॥

चलत देखि यशुमति सुख पावै।
ठुमुक ठुमुक धरनीधर रेंगत जननी देखि दिखावै॥
देहरी लौं चलि जात बहुरि फिर फिरि इतही को आवै।
गिरि गिरि परत बनत नहिं नाँघत सुर मुनि शोच करावै॥
कोटि ब्रह्मांड करत छिन भीतर हरत विलंब न लावै।
ताको लिये नँद की रानी नाना रूप खिलावै॥
तब यशुमति कर टेकि श्याम को क्रमक्रम कै उतरावै।
सूरदास प्रभु देखि देखि सुर नर मुनि मन बुद्धि भुलावै॥

अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
देख्यो चाहत कमलनैन को, निसिदिन रहत उदासी॥
आये ऊधो फिरि गये अँगना डारि गये गर फाँसी॥
केसरि-तिलक मोतिन की माला वृन्दावन को वासी॥
काहू के मन की कोऊ न जानत लोगन के मन हाँसी॥
सूरदास प्रभु! तुमरे दरस बिन लेहौं करवत कासी॥

ब्रजवासी यह सुनि सब आये ।
कहाँ परयो गिरि कुँवर कन्हाई बालक लै सो ठौर दिखाये ।।
सूनो गोकुल कियो श्याम तुम यह कहि लोग उठे सब रोइ ।
नंद गिरत सबहिन धरि राख्यो पोंछत बदन नीर लै धोइ ।।
ब्रजवासी तब कहत नँद सों मरण भयो सब ही को आइ ।
सूर श्याम बिनु को बसि है ब्रज धृग जीवन तिहुँ भुवन कहाइ ।।

ऊधो नँदनंदन सों इतनी कहियो ।
यद्यपि ब्रज अनाथ करि डारयो तदपि सुरति चित किये रहियो ।।
तिनकी तोर करहु जनि हमसों एक बीस की लाज निबहियो ।
गुण अवगुण देखि जनि कीजतु दासन दास की इतनी सहियो ।।
तुम बिन प्राण त्याग हम करिहैं यह अवलम्ब न सुपनेहु लहियो ।
सूरदास प्रभु लिखि दै पठयो कहाँ भोग कहाँ पिय नंद हियो ।।

ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं ।
बृंदावन गोकुल तन आवत सघन तृणन की छाहीं ।।
प्रात समय माता यशुमति अरु नंद देखि सुख पावत ।
माखन रोटी दह्यौ सजायो अति हित साथ खवावत ।।
गोपी ग्वालबाल सँग खेलत सब दिन हँसत सिरात ।
सूरदास धनि धनि ब्रज बासी जिनसों हँसत ब्रजनाथ ।।

रसखान

भक्त की भावना

मानुष हों तो वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हों तो कहा बसु मेरो चरौं नित नंद की धेनु मझारन ॥
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरन्दर धारन ।
जौ खग हों तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन ॥

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं ॥
नैनन सों रसखान जबै ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
केतिक ही कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं ॥

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी ।
ओढ़ि पितांबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी ॥
भावतो सोहि मेरो रसखान सो तेरे कहे सब स्वांग करौंगी ।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी ॥

बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी ॥
जान वही उन प्रान के संग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यों रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानि ॥

ललित लीला

गावैं गुनी गनिका गन्धर्व और सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनन्त गनन्त गनेस ज्यों ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत ॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत ॥

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं ॥
नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥

शंकर-से सुर जाहि भजैं चतुरानन ध्यान में धर्म बढ़ावैं।
नेक हिये में जो आवत ही रसखान महाजड़ मूढ़ कहावैं ॥
जापर सुंदर देव-बधू नहिं वारत प्रान अबार लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥

ब्रह्म में ढूँढयो पुरानन गानन वेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो, सुन्यो कबहूँ न कितूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ॥
टेरत हेरत हारि परयो रसखान बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन ॥

बाल-शोभा

धूर भरे अति शोभित स्यामजू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।
खेलत खात फिरैं अँगना पग पैजनी बाजति पीरी कछोटी ।।
वा छबि को रसखान बिलोकत बारत काम कला निज कोटी ।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी ।।

प्रेम की महिमा

जेहि बिनु जाने कछुहि नहिं जान्यो जात बिसेस ।
सोई प्रेम जेहि जान कै रहि न जात कछु सेस ।।
प्रेम फाँस सो फँसि मरै सोई जियै सदाहि ।।
प्रेम मरम जाने बिना मरि कोउ जीवित नाहिं ।।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

यशोदा उद्धव संवाद

मेरे प्यारे सकुशल सुखी और सानन्द तो हैं ?
कोई चिन्ता मलिन उनको तो नहीं है बनाती ?
ऊधो छाती बदन पर है म्लानता भी नहीं तो ?
हो जाती हैं हृदय-तल में तो नहीं वेदनाएँ ॥

मीठे मेवे, मृदुल नवनी और पक्वान्न नाना ।
धीरे प्यारों सहित सुत को कौन होगी खिलाती ?
प्रातः पीता सुपय कजरी गाय का चाव से था ।
हा ! पाता है न अब उसको प्राणप्यारा हमारा ॥

संकोची है परम अति ही धीर है लाल मेरा ।
लज्जा होती अमित उसको माँगने में सदा थी ।
जैसे लेके स-रुचि सुत को अंक में मैं खिलाती ।
हा ! वैसे ही अब नित खिला कौन बामा सकेगी ?

मैं थी सारा दिवस मुख को देखते ही बिताती ।
हो जाती थी व्यथित उनको म्लान जो देखती थी ।
हा ! ऐसे ही अब बदन को देखती कौन होगी ?
ऊधो ! माता सदृश ममता और की है न होती ॥

खाने, पीने, शयन करने आदि की एक बेला।
जो जाती थी कुछ टल कभी खेद होता बड़ा था।
ऊधो ! ऐसी दुखित उसके हेतु क्यों अन्य होगी।
माता की सी अवनि-तल में है अमाता न होती॥

जो लाती थीं विविध रंग के मुग्धकारी खिलौने।
वे आती हैं सदन अब भी कामना में पगी सी॥
हा ! जाती हैं पलट जब वे हो निराशा-निमग्ना।
तो उन्मत्ता-सदृश मग की ओर मैं देखती हूँ॥

प्यारा खाता रुचिर नवनी को बड़े चाव से था।
खाते खाते पुलक पड़ता नाचता कूदता था॥
ये बातें हैं सरस नवनी देखते याद आतीं।
हो जाता है मधुरतर औ स्निग्ध भी दुग्धकारी॥

प्यारे ऊधो ! सुरत करता लाल मेरी कभी है ?
क्या होता है न अब उसको ध्यान बूढ़े पिता का ?
रो-रो हो-हो विकल अपने बार जो हैं बिताते।
हा ! वे सीधे सरल शिशु हैं क्या नहीं याद आते ?

कैसे वृन्दा विपिन बिसरा क्यों लता बेलि भूली।
कैसे जी से उतर सिगरी कुंज पुंजें गई हैं ?
कैसे फूले विपुल फल से नम्र भूजात भूले।
कैसे भूला विकच तरु सो कालिंदी कूल वाला॥

कुंजों-कुंजों प्रति दिन जिन्हें चाव से था चराया।
जो प्यारी थीं परमब्रज के लाड़िले को सदा ही।
खिन्ना, दीना विकल वन में आज जो घूमती हैं।
ऊधो ! कैसे हृदय-धन को हाय वे धेनु भूलीं ?

गोस्वामी तुलसी दास

सीता की खोज

दो०—जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्री राम ।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरि नाम ॥

रघुपति अनुजहि आवत देखी । बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी ॥
जनकसुता परिहरिहु अकेली । आयहु तात बचन मम पेली ॥
निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं । मम मन सीता आश्रम नाहीं ॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी । कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥
अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ । गोदावरि तट आश्रम जँहवाँ ॥
आश्रम देखि जानकी हीना । भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥
हा गुनखानि जानकी सीता । रूप सील ब्रत नेम पुनीता ॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती । पूछत चले लता तरु पाँती ॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं । नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥

सुनु जानकी तोहि बिनु आजू । हरषे सकल पाइ जनु राजू ।।
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं । प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ।।
एही विधि खोजत विलपत स्वामी । मनहुँ महा विरही अति कामी ।।
पूरन काम राम सुख रासी । मनुज चरित कर अज अबिनासी ।।
आगे परा गीधपति देखा । सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ।।

दो०—कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिंधु रघुबीर ।
निरखि राम छबि धाम मुख, बिगत भई सब पीर ।।

तब कह गीध बचन धरि धीरा । सुनहु राम भंजन भव भीरा ।।
नाथ दसानन यह गति कीन्ही । तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही ।।
लै दछिन दिसि गयउ गोसाईं । बिलपति अति कुररी की नाईं ।।
दरस लागि प्रभु राखेऊँ प्राना । चलन चहत अब कृपा निधाना ।।
राम कहा तनु राखहु ताता । मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता ।।
जा कर नाम मरत मुख आवा । अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ।।
सो मम लोचन गोचर आगें । राखौं देह नाथ केहि खाँगें ।।
जल भरि नयन कहहिं रघुराई । तात कर्म निज तें गति पाई ।।
परहित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ।।
तनु तजि तात जाहु मम धामा । देंउ काह तुम्ह पूरन कामा ।।

दो०--सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहिं दसानन आइ ।।

गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषन बहु पट पीत अनूपा ।।
स्याम गात बिसाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि बारी ।।

छं०—जय राम रूप अनूप निर्गुण सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं॥
बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरम्।
गोबिन्द गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं॥
जे राममंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं।
नित नौमि राम अकाम प्रियकामादि खल दल गंजनं॥ २॥
जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान विराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं॥
सो प्रगट करुनाकंद सोभावृंद अग जग मोहई।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई॥
जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पस्संति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा॥
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥
दो०—अबिरल भगति मांगि बर गीध गयउ हरि धाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥
कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला॥
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥
सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी॥
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई॥
संकुल लता विटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन॥

आवत पंथ कबंध निपाता । तेहिं सब कही साप कै बाता ।।
दुरवासा मोहि दीन्ही सापा । प्रभुपद पेखि मिटा सो पापा ।।
सुनु गंधर्व कहउँ मैं तोही । मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ।।

दो०—मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव ।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव ।।

सापत ताड़त परुष कहंता । बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ।।
पूजिअ विप्र सील गुन हीना । सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना ।।
कहि निज धर्म ताहि समुझावा । निज पद प्रीति देखि मन भावा ।।
रघुपति चरनकमल सिरु नाई । गयउ गगन आपनि गति पाई ।।
ताहि देइ गति राम उदारा । सबरी कें आश्रम पगु धारा ।।
सबरी देखि राम गृहँ आए । मुनि के बचन समुझि जियँ भाए ।।
सरसिज लोचन बाहु बिसाला । जटा मुकुट सिर उर बन माला ।।
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई । सबरी परी चरन लपटाई ।।
प्रेम मगन मुख बचन न आवा । पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ।।
सादर जल लै चरन पखारे । पुनि सुंदर आसन बैठारे ।।

दो०--कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ।।

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी । प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ।।
केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी । अधम जाति मैं जड़मति भारी ।।
अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगति कर नाता ।।
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ।।

भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

दो०—गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥
जनक सुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबर गामिनी॥
पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूँ पूछहु मतिधीरा॥
बार बार प्रभु पद सिर नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥

छं०—कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयँ पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू॥

दो०—जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहिं बिसारि ॥

चले राम बन त्यागा सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा॥
लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करति हहिं निंदा॥
हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम आनन्द करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ए आए॥
संग लाई करिनी करि लेहीं। मानहु मोहि सिखावनु देहीं॥
सास्त्र सुचिंतित पुनिपुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ॥
राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥

दो०—बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल॥
देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात॥

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥
कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका॥
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना॥
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए॥
कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊंट बिसराते॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी॥

तीतिर लावक पदचर जूथा । बरनि न जाय मनोज बरूथा ॥
रथ गिरि शिला दुंदुभी झरना । चातक बंदी गुन गन बरना ॥
मधुकर मुखर भेरि सहनाई । त्रिविध बयारि बसीठी आई ॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें । बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें ॥
लछिमन देखत काम अनीका । रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका ॥
एहि कें एक परम बल नारी । तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी ॥

दो०—तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥
लोभ कें इछा दंभ बल काम कें केवल नारि ।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि ॥

गुनातीत सचराचर स्वामी । राम उमा सब अन्तर जामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई । धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई ॥
क्रोध मनोज लोभ मद माया । छूटहिं सकल राम की दाया ॥
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥
उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरिभजनु जगत सब सपना ॥
पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा । पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥
संत हृदय जस निर्मल बारी । बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा । जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

दो०—पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म ।
मायाछन्न न देखिऐ जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥
सुखी मीन सब एक रस अति अगाध जल माहिं ।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं ॥

बिकसे सरसिज नाना रंगा । मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ।
बोलत जल कुक्कुट कल हंसा । प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥

चक्रवाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई॥
सुन्दर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई॥
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाए॥
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला॥
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना॥
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ॥
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥

दो०—फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ॥

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा॥
देखी सुन्दर तरुबर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥
तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥
बिरहवंत भगवंतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेषी॥
मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥

पद

(१)

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो छाँड़िये कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रजबनितनि, भये मुदमंगलकारी।

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अञ्जन कहा आंखि जेहि फूटै, बहुत कहौ कहाँ लौं।
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो।

(२)

रघुवर ! तुमको मेरी लाज।
सदा सदा मैं सरन तिहारी, तुम बड़े गरीबनिवाज॥
पतित उधारन बिरुद तिहारो स्त्रवनन सुनी अवाज॥
हौं तो पतित पुरातन कहिये, पार उतारो जहाज॥
अघ-खंडन, दुख-भंजन जन के यही तिहारो काज॥
तुलसिदास पर किरपा करिये भक्ति-दान देहु आज॥

(३)

भज मन राम चरण सुखदाई ॥ध्रु०॥
जिहि चरनन से निकसी सुरसरी संकर जटा समाई।
जटासंकरी नाम पर्यो है, त्रिभुवन तारन आई॥
जिन चरनन की चरनपादुका भरत रह्यो लव लाई।
सोई चरन केवट धोय लीने तब हरि नाव चलाई॥
सोई चरन संतन जन सेवत सदा रहत सुखदाई।
सोई चरन गौतमऋषि-नारी परसि परमपद पाई॥
दंडक बन प्रभु पावन कीन्हो ऋषियन त्रास मिटाई।
सोई प्रभु त्रिलोक के स्वामी कनक मृगा संग धाई॥
कपि सुग्रीव बंधु-भय-व्याकुल तिन जय छत्र फिराई।
रिपु को अनुज विभीषण निसिचर परसत लंका पाई॥
सिवसनकादिक अरु ब्रह्मादिक शेष सहस मुख गाई।
तुलसिदास मारुत-सुत की प्रभु निज मुख करत बड़ाई॥

(४)

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ।
जासों दीनता कहौं, हौं देखौं दीन सोऊ ॥
सुर नर मुनि असुर नाग साहिब तो घनेरे।
तौलौं, जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥
त्रिभुवन तिहुँ काल विदित वदति वेद चारी।
आदि अंत मध्य राम! साहिबी तिहारी ॥
तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।
सुनि सुभाउ सील सुजस जाचन जन आयो ॥
पाहन, पसु, विटप, विहंग अपने कर लीन्हें।
महाराज दशरथ के! रङ्क राय कीन्हें ॥
तू गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु! 'तुलसीदास मेरो' ॥

(५)

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंजहारी ॥१॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों?
मो समान आरत नहिं, आरतहर तोसो ।२।
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो।
तात,मात,गुरु,सखा तू, सब विधि हि तू मेरो ॥३।
तोहि मोहिं नाते अनेक मानियै जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन-सरन पावै ॥४॥

मैथिली शरण गुप्त

साकेत

रीता दिन बीता, रात हुई,
ज्यों त्यों वह रात प्रभात हुई।
फिर सूनी सूनी साँझ हुई,
मानो सब बेला बाँझ हुई।
उर्मिला कभी तो रोती थी,
फिर कभी शांत सी होती थी।
देता प्रबोध जो, सुनती थी,
मन में अतर्क्य कुछ गुनती थी।

उन माताओं की करुणा-कथा,
देती थी दारुण द्विगुण व्यथा।
सुत गए तथा पति पड़े यथा,
रोने तक का अवकाश न था!
आँधी से उखड़े वृक्ष-सदृश,
थे भूप शोक-हत जर्जर-कृश।

ज्यों हत प्रसूना लतिकाएँ,
वे थीं समीप दायें-बायें।
ज्यों त्यों कर शोक सहन करके,
अंचल से वायु वहन करके,
बोलीं प्रभुवरप्रसू तब यों,—
"हे नाथ, अधीर न हो अब यों।
तुमने निज सत्य-धर्म पाला,
सुत ने स्वापत्य-धर्म पाला।
पत्नी पति-संग बनी देवी,
प्रिय अनुज हुआ अग्रज-सेवी।

जो हुआ सभी अविचित्र हुआ,
पर धन्य मनुष्य-चरित्र हुआ।
गौरव-बल से यह शोक सहो,
देखो हम सबकी ओर अहो!"

भूपति ने आखें खोल कहा,—
"यह कौन है कि जो बोल रहा?
कौसल्ये, धन्य राम-मातः,
क्या कहूँ, हाय रे! धिक धातः!
यह शोक कहाँ तक रोकूँ मैं?
किस मुँह से तुम्हें विलोकूँ मैं?
हा! आज दृष्टि भी कहाँ गई?
वह वधू जानकी जहाँ गई।

सीता भी नाता तोड़ गई,
इस वृद्ध ससुर को छोड़ गई।
उर्मिला बहू की बड़ी बहन!
किस भाँति करूँ मैं शोक सहन?
उर्मिला कहाँ है, हाय बहू!
तू रघुकूल की असहाय बहू!
मैं ही अनर्थ का हेतु हुआ,
रवि कुल में सचमुच "केतु" हुआ,
यदि राम न लौटेंगे बन से,
तो भेंट न होगी इस जन से।
कैकेयि, भोग कर बलि मेरी,
राज्यश्री तृप्त रहे तेरी!
पाकर दशरथ जैसा दानी,
कर चुकी भोगिनी मनमानी।
माँगो तुम भी कुछ पटरानी,
दूँ लेकर आँखों का पानी।"
"मागूँगी क्यों न नाथ, तुमसे,
दो यही मुझे कल्प द्रुम-से।
कैकेयी हों चाहे जैसी,
सुत-वंचिता न हों मुझ जैसी।"
क्या यही माँग कर लेती हो?
या मरण शान्ति तुम देती हो?
पर कहाँ भाग्य में वह मेरे,
कृत कर्म जो मुझे हैं घेरे।"

दोनों सु-रानियाँ रोती थीं ,
पति के पद-पद्म भिगोती थीं ।
नृप राम राम ही रटते थे ,
युग के समान पल कटते थे ।
फिर भी सुमन्त्र हैं साथ गये ,
गृह-दशा देख रघुनाथ गये ।
अटकी थी आशा एक यही ,
जो थी अब उनको जिला रही ।
आशा अवलम्बदायिका है ,
क्या ही कल-गीत-गायिका है ।
वह आप क्यों न नाता तोड़े,
पर कौन है कि उसको छोड़े ?
ऊँचे अट्टों पर चढ़ चढ़ कर—
सब ओर पथों में बढ़ बढ़ कर,
रथ-मार्ग देखने लगे सभी ,
फिर आवें राघव कहीं अभी !
पर यदि रघुनाथ लौट आते—
तो प्रथम ही न वे वन जाते ।
लौटे सुमन्त्र ही बेचारे ,
अनुरोध तर्क भी सब हारे ।

कर में घोड़ों की रास लिये ,
निज जीवन का उपहास किये ,

हो कर मानो परतंत्र निरे ,
सूना रथ लिए सुमन्त्र फिरे ।
रथ मानों एक रिक्त घन था,
जल भी न था, न वह गर्जन था ।
वह बिजली भी थी हाय ! नहीं ,
विधि-विधि पर कहीं उपाय नहीं।
जो थे समीर के जोड़ों के—,
उठते न पैर थे घोड़ों के !

थे राम बिना वे भी रोते ,
पशु भी प्रेमानुरक्त होते ।
जो भीषण रण में भी न हटे ,
मानों अब उनके पैर कटे ।
अति भार हुआ रीता रथ था,
गृह-पथ मानों अरण्य-पथ था ।
अवसन्न सचिव का तन-मन था,
करता समीर भी सन सन था।

सिर पर अनन्त-सा आ टूटा,
कटि टूटी और भाग्य फूटा।
धरती मानों थी मरी पड़ी,
थी प्राकृत भीती से भरी पड़ी।
सम्मुख मानों मुख खोल बड़ा,
खाने को था दिग्दैत्य खड़ा ।

था सोच यही मुख-सरसिज को,
किस भाँति दिखाऊँगा निज को ?
इस लिए श्यामता लाता था—
उसमें निज मूर्ति छिपाता था।
उर विकल हुआ क्या करता था ?
साँसे शरीर में भरता था।
सन्देह सुनाए बिना कहीं,
गिर जाय न हा ! यह देह यहीं।

जब रजनी आकर प्राप्त हुई,
बाहर ही साँझ समाप्त हुई,
नीरव गति से, उदास उर में,
तब सचिव प्रविष्ट हुए पुर में।
थी पड़ी पुरी भी काली-सी,
(जगती थी जहाँ दिवाली-सी।)
खोले थी मानों केश पुरी,
रक्खे थी विधवा-वेश परी।
क्या घुसे सुमंत्र रसातल में ?
रुक उठी साँस भी पल पल में।
यह तमी हटेगी क्या न कभी,
पौ यहाँ फटेगी क्या न कभी ?
सब चौक बंद थे, पथ सूनें,
हो गई अमावस-सी पूनें।

रहती जो गीत-गुंजरित सी,
गृह-राजि आज थी स्तम्भित सी।
पुर-रक्षक नीरव फिरते थे,
आँसू अमात्य के गिरते थे।
"हो चुकी लूट घर की गहरी,
अब किसे रखाते हैं प्रहरी ?"
उत्तर में 'नहीं' सुने न कहीं,
इस लिए "राम लौटे कि नहीं ?"
यह पूँछ न सके सचिव-वर से,
पुरवासी मौन रहे डर से !
नीरवता ही अमात्य वर की,
थी शोक-सूचना उत्तर की।
कोई अनिष्ट कहते-कहते,
बहुधा मनुष्य चुप ही रहते।
रथ देख सभी ने सीस धुना,
ऊपर अमरों ने स्पष्ट सुना,—
'क्या फिरे हमारे आर्य नहीं ?',
सुर बोले—'था सुर-कार्य वहीं।'
देवों के वाक्य सुधा-सींचे,
सुन पड़े न उसी समय नीचे।
वे कोलाहल में लीन हुए,
पुरवासी दुख से दीन हुए।
कर के सुमंत्र ने सिर नीचा,
आँखों को एक बार मींचा।

जिस रथ पर थे प्रसून झड़ते,
उस पर थे आज अश्रु पड़ते।

जब नृप समीप उपनीत हुए,
तब शोक भूल वे भीत हुए।
"यह पोत डूब ही जावेगा—
या कूल-किनारा पावेगा ?"
गजराज पंक में धँसा हुआ,
छटपट करता था फँसा हुआ।
हथनियाँ पास चिल्लाती थीं,
वे विवश, विकल बिल्लाती थीं।
बोले नृप—"राम नहीं लौटे ?"
गूँजा सब धाम—'नहीं लौटे।'
नृप ने सशंक जो कुछ पूछा,
बस उत्तर हुआ वही छूछा।
यद्यपि सुमन्त्र ने कुछ न कहा,
प्रतिनाद तदपि नीरव न रहा।
पर सचिव-मौन ही अधिक खला,
भर आया सूखा हुआ गला।
बोले फिर वे कि-"कहाँ छोड़ा,
ले चलो मुझे कि जहाँ छोड़ा।
मुझको भी वहीं छोड़ आओ,
वह रामचन्द्र-मुख दिखलाओ।"

टूटी महीप की हृत्तंत्री,
बोले विषाद पूर्वक मंत्री—
"हे आर्य, राम-मुख देखोगे,
दुख देख क्या न सुख देखोगे ?
आवेंगे वे यश को लेकर,
सुख पावेंगे तुम को देकर।
नभ में भी नया नाम होगा,
पर चिंता से न काम होगा।
अवसर ही उन्हें मिलावेगा,
यह शोक न हमें जिलावेगा।
राघव ने हाथ जोड़ करके,
तुमसे यह कहा धैर्य धरके—
"आता है जी में तात यही"—
पीछे पिछेल व्यवधान-मही—
कब लौटूँ चरणों में आकर,
सुख पाऊँ करस्पर्श पाकर।
पर धर्म रोकता है वन में,
करना न सोच मेरा मन में।
देगा मुझको विश्रान्ति वही,
दे तात तुम्हें भी शांति वही।"
"क्या शांति ? शांति, हा शांति कहाँ ?
बन गई केकयी क्रांति यहाँ।

हो गया पुण्य ही पाप मुझे,
दे रहा धर्म ही ताप मुझे।
कुछ नहीं कहा क्या सीता ने,
वैदेही वधू विनीता ने?"
बोले सुमन्त्र—"वे कह न सकीं,
कहने जाकर भी रुकीं, थकीं।
साकेतस्मृति में मग्न हुईं,
करके प्रणाम भूलग्न हुईं।
फिर नभ की ओर हाथ जोड़े,
दृग सजल हुए थोड़े थोड़े।

राष्ट्रवाद

भूषण

कलियुग जलधि अपार, उद्ध अधरम्म उर्म्मिमय।
लच्छनि लच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ मगर चय।।
नृपति नदीनद वृन्द होत जाको मिलि नीरस।
भनि भूषन सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प बस।।
हिन्दुवान पुण्यगाहक बनिक, तासु निबाहक साहि सुव।
बर बादवान किरवान धरि जस जहाज सिवराज तुव।।

कामिनि कंत सों जामिनि चंद सों दामिनि पावस मेघ घटा सों।
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों प्रीति बड़ी सनमान-महा सों।।
'भूषन' भूषन सों तरुनी, नलिनी नव पूषनदेव-प्रभा सों।
जाहिर चारिहु ओर जहान लसै हिंदुवान खुमान सिवा सों।।

दच्छिन-धरन धीर-धरन खुमान गढ़,
लेत गढ़धरन सों धरम दुवारु दै।
साहि नरनाह को सपूत महाबाहु लेत,
मुलुक महान छीनि साहिन को मारु दै।।

संगर में सरजा सिवाजी अरि सैनन को,
सारु हरि लेत हिंदुवान सिर सारु दै।
भूषन भुसिल जय जस को पहारु लेत,
हरजू को हारु हर गन को अहारु दै॥

यों कवि भूषन भाषत है यक तो पहिलै कलिकाल की सैली।
तापर हिंदुन की सब राह सु नौरंगसाह करी अति मैली॥
साहितनै सिव के डर सों तुरकौ गहि बारिधि की गति पैली।
वेद पुरानन की चरचा अरचा द्विज-देवन की फिर फैली॥

आदि की न जानो देवी-देवता न मानो साँच,
कहूँ जो पिछानो बातो कहत हौं अब की।
बब्बर अकब्बर हिमायूँ हद्द बाँधि गए,
हिन्दू औ तुरुक की कुरान वेद ढब की॥
इन पातसाहन में हिन्दुन की चाह हुती,
जहाँगीर साहजहाँ साख पूरें तब की।
कासी हू की कला गई मथुरा मसीत भई,
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सब की॥

राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे बेद-विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती रजधानी राखी राजन की,
धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं॥

भूषन सुकवि जीति हद मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तब सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली-दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं॥

वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो, माला राखी गर मैं॥
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं॥

आपस की फूट ही तें सारे हिंदुवान टूटे,
टूट्यो कुल रावन अनीति-अति करतें।
पैठिगो पताल बलि बज्रधर ईरषा तें,
टूट्यो हिरनाच्छ अभिमान चित धरतें॥
टूट्यो सिसुपाल बासुदेवजू सों बैर करि,
टूट्यो है महिष दैत्य अधम बिचरतें।
राम-कर छूवन ते टूट्यो ज्यों महेस-चाप,
टूटी पातसाही सिवराज संग लरते॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारत दुर्दशा

रोअहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई ।
हा हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥
सब के पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो ।
सब के पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो ॥
सब के पहिले जो रूप रंग रस भीनो ।
सब के पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो ॥
अब सबके पीछे सोई परत लखाई ।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ॥

जहँ भए शाक्य हरिचंदरु नहुष ययाती ।
जहँ राम युधिष्ठिर बासुदेव सर्याती ॥
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती ।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती ॥
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई ।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ॥

लरि बैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी ।
करि कलह बुलाई जवनसैन पुनि भारी ॥
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी ।
छाई अब आलस कुमति कलह अँधियारी ॥
भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई ।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ॥

अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ॥
ताहू पै महँगी काल रोग बिस्तारी ।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री ॥
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई ।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ॥

आह्वान

चलहु बीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उड़ाओ ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींची रनरंग जमाओ ॥
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ ।
केसरिया बानो सजि सजि रन कंकन बाँधौ ॥
जौ आरजगन एक होइ निज रूप सम्हारैं ।
तजि गृहकलहहिं अपनी कुल मरजाद विचारैं ॥
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी ।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मँझारी ॥

उठहु बीर तरवार खींचि मारहु घन संगर।
लोह-लेखनी लिखहु आर्य बल जवनहृदय पर॥
मारू बाजे बजैं कह्यौ धौंसा घहराहीं।
उड़हिं पताका सत्रुहृदय लखि-लखि थहराहीं॥
चारन बोलहिं आर्य-सुजस बँदी गुन गावैं।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं॥
चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर।
हींसहिं हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर॥
छन महँ नासहिं आर्य नीच जवनन कहँ करि छय।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय॥

मैथिलीशरण गुप्त

मातृ-मूर्ति

जय जय भारत-भूमि भवानी;
अमरों ने भी तेरी महिमा वारंवार बखानी !

तेरा चंद्र-वदन वर विकसित शान्ति-सुधा बरसाता है;
मलयानिल-निश्वास निराला नवजीवन सरसाता है।
हृदय हरा कर देता है यह अंचल तेरा धानी;
जय जय भारत भूमि-भवानी !

उच्च-हृदय-हिमगिरि से तेरी गौरव-गङ्गा बहती है;
और करुणा कालिन्दी हम को प्लावित करती रहती है।
मौन मग्न हो रही देखकर सरस्वती-विधि-वाणी;
जय जय भारत-भूमि भवानी !

तेरे चित्र विचित्र विभूषण हैं फूलों के हारों के;
उन्नत-अम्बर-आतपत्र में रत्न जड़े हैं तारों के।

केशों से मोती झरते हैं या मेघों से पानी ?
जय जय भारत-भूमि भवानी !

वरद-हस्त हरता है तेरे शक्ति-शूल की सब शङ्का;
रत्नाकर-रसने, चरणों में अब भी पड़ी कनक-लङ्का।

सत्य-सिंह-वाहिनी बनी तू विश्व-पालिनी रानी;
जय जय भारत-भूमि भवानी !

करके माँ, दिग्विजय जिन्होंने विदित विश्वजितयाग किया;
फिर तेरा मृत्पात्र मात्र रख सारे धन का त्याग किया।

तेरे तनय हुए हैं ऐसे मानी, दानी, ज्ञानी—
जय जय भारत-भूमि भवानी !

तेरा अतुल अतीत काल है आराधन के योग्य समर्थ,
वर्तमान साधन के हित है और भविष्य सिद्धि के अर्थ।

भुक्ति मुक्ति की युक्ति, हमें तू रख अपना अभिमानी;
जय जय भारत-भूमि भवानी !

माखनलाल चतुर्वेदी

फूल की अभिलाषा

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ॥
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ;
चाह नहीं, देवों के सिर पर चँढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ॥
मुझे तोड़ लेना बनमाली! उस पथ में देना तुम फेंक;
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने! जिस पथ जावें वीर अनेक।

उन्मूलित वृक्ष

भला किया, जो इस उपवन के सारे पुष्प तोड़ डाले,
भला किया, मीठे फलवाले ये तरुवर मरोड़ डाले,
भला किया, सींचो पनपाओ, लगा चुके हो जो कलमें,
भला किया, दुनिया उलटा दी प्रबल उमँगों के बल में,

लो हम तो चल दिए,
नए पौधो-प्यारो ! आराम करो ।
दो दिन की दुनिया में आए,
हिलो-मिलो कुछ काम करो ।

पथरीले ऊँचे टीले हैं, रोज़ नहीं सींचे जाते,
वे नागर न यहाँ आते हैं, जो थे बाग़ीचे आते,
झुकी टहनियाँ तोड़ तोड़ कर, बनचर भी खा जाते हैं,
शाखा-मृग कन्धों पर चढ़ कर भीषण शोर मचाते हैं ।

दीनबन्धु की कृपा
बन्धु, जीवित हैं, हाँ, हरियाले हैं,
भूले-भटके कभी गुज़रना
हम वे ही फल वाले हैं ॥

रामनरेश त्रिपाठी

देश सेवा

(१)

एक समय स्वाधीन देश को
समझ शत्रु-भय-रहित सुरक्षित
लोग स्वर्ग-सुख भोग रहे थे
शान्ति-सहित, निर्विघ्न, अशङ्कित
सुधा-मधुर रसमय काव्यों को
पढ़ सुन समझ और अनुभव कर
अभिनय कर, विनोद-विनिमय कर
आनन्दित थे सब नारी नर।

(२)

पारस्परिक सहानुभूतिमय
सकल मनुज नीरुज निरुपद्रव
हाट-बाट घर-घर में प्रतिदिन
करते थे संगीत महोत्सव।
युवक-युवतियों के कलोल से
गूँजा रहता था घर उपवन
नित्य नवल कामना-निरत थे
विविध विलास-युक्त उनके मन

(३)

यह सुख देख द्वेषवश अथवा
धनलिप्सावश बल संचय कर
एक शत्रु चतुरंग चमू ले
औचक आ पहुँचा सीमा पर
देशाधिप ने तुमुल युद्ध कर
रोका बहु संख्यक ले सैनिक
पर अरि की दुर्जेय अनी से
हार गया नृप नहीं सका टिक।

(४)

विद्युत-वेगवन्त बैरी ने
पाकर बाधा रहित सुअवसर
कितने ही पुर नगर ग्राम घर
धान्यागार लिए अधिकृत कर
पहुँचा दी सत्त्वर स्वदेश में
यह घोषणा नृपति ने घर घर
अपने देश मान धन जन की
रक्षा करे प्रजा सब मिलकर।

(५)

मैं नितान्त असमर्थ हुआ हूँ
कोई मुझ पर रहे न निर्भर
अपनी यह असहाय अवस्था
चकित हो गए लोग श्रवण कर

जैसे थे वे सुखाभिलाषी
वैसे ही थे सावधान नित
नीति निपुण मन्त्रणाकुशल थे
वे रहस्य-रक्षक इन्द्रिय-जित।

(६)

वे थे नीति-धर्म के रक्षक
जगज्जयी पुरुषों के वंशज
पृथ्वी भर के नृप होते थे
धन्य प्राप्त कर जिनकी पद रज
सत्य शौर्य विश्वास न्याय के
एक मात्र आधार धरा पर
वे ही थे; उनका जीवन था
जग के निबिड़ विपिन में दिनकर।

(७)

वे न जानते थे भूतल पर
जीवित रहना पराधीन बन
न्याय और स्वातन्त्र्य जगत में
उनके थे दो ही जीवन-धन
सुन नृप की घोषणा शत्रु की
प्रबल शक्ति का पाकर परिचय
किया उन्हों ने शीघ्र शत्रु को
उचित दण्ड देने का निश्चय।

(८)

जय से दृढ़ विश्वास-युक्त थे
दीप्तिमान जिनके मुख-मण्डल
पर्वत को भी खण्ड-खण्ड कर
रजकण कर देने को चंचल
कड़क रहे थे अति प्रचण्ड भुज—
दण्ड शत्रु-मर्दन को विह्वल
ग्राम ग्राम से निकल निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल।

(९)

अपने शयनागार बन्द कर।
दिए नवोढाओं ने तत्क्षण
बाँध दिए पतियों की कटि में
असि, कलाइयों में रण-कंकण
माताओं ने विजय-तिलक कर
छिड़के थे जिन पर पवित्र जल
ग्राम ग्राम से निकल-निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल।

(१०)

अरि मर्दन के मनोभाव थे
जिन की मुख-आकृति में लक्षित
जिनके हृदय पूर्व पुरुषों की
वीर कथाओं से थे रक्षित

जिनमें शारीरिक बल से था
कहीं अधिक उद्दाम मनोबल
ग्राम ग्राम से निकल-निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल।

(११)

जिनकी नस-नस में विद्युत थी
आँखों में था क्रोध प्रज्वलित
छाती में उत्साह भरा था
वाणी में था प्राण प्रवाहित
मातृ-भूमि के लिए हृदय में
जिनके भरी भक्ति थी अविरल
ग्राम ग्राम से निकल निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल।

(१२)

माँ ने कहाँ—दूध की मेरे
लज्जा रखना रण में हे सुत
स्त्री ने कहा—लौटना घर को
आर्य-पुत्र ! तुम विजय-श्री-युत
इन वचनों से गूँज रहे थे
जिनके श्रवण और अन्तस्तल
ग्राम ग्राम से निकल निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल।

(१३)

रहता था उत्साह प्रवाहित
गाँवों में राहों पर दिन भर
घर से निकल खड़ी रहती थीं
माताएँ भोजन जल लेकर
सैनिक युवकों को रणावर्ती
निज पुत्रों के तुल्य मानकर
खिला पिला कर सुख पाती थीं
प्रेम-सहित दृग मूँद ध्यान कर।

(१४)

बहनें कहती थीं—हे भाई
बैरी का अभिमान चूर्ण कर
विजयी योद्धा के बानक में
इसी राह होकर जाना घर
हम गायेंगी गीत विजय के
फूल और लाजा बरसा कर
बहनों को आनन्दित करना
हर्ष हमारा सुना सुना कर।

(१५)

बहुएँ भूख प्यास बिसरा कर
पथ पर निर्निमेष दृग देकर
देख सैनिकों के सज धज निज
पतियों की छवि दृग में लेकर

पथ की ओर खोल वातायन
बार बार चुप चाप आह भर
किसी कल्पना में बेसुध सी
वहीं खड़ी रहती थीं दिन भर।

(१६)

युद्ध जीत कर वीर वेष में
आएँगे मेरे प्राणेश्वर
पहनाऊँगी यह जय-माला
इसी भावना को उर में धर
प्रातःकाल नित्य उठ करके
उपवन से नव कुसुम चयन कर
हार गूँथ कर वे रखती थीं
प्रेम-वारि से पूर्ण नयन कर।

(१७)

गाँव गाँव में चौराहों पर
प्रति दिन सन्ध्या को नारी नर
एकत्रित हो युद्ध-भूमि के
अति रोचक वृत्तान्त श्रवण कर
हो जाते थे हर्ष-विमोहित
रोमाञ्चित गर्वित आनन्दित
कभी कभी चिन्तित आन्दोलित
उत्तेजित विक्षोभ-विकम्पित।

(१८)

करता था जब समराङ्गण में
कोई योद्धा प्राप्त वीर-गति
उसके जननी-जनक गाँव में
होते थे तब सम्मानित अति
उन्हें राष्ट्र-रक्षक कह कर सब
सादर करते थे मस्तक नत
क्षण में हो जाता था उनका
पुत्र वियोग गर्व में परिणत।

(१९)

होता था जब समर-भूमि में
कोई सैनिक लड़कर आहत
उसकी वीर-प्रसू के अद्भुत
हो जाते थे भाव मनोगत
अपनी कोख पवित्र मान कर
वह कहती होकर आनन्दित
वीर कर्म का मेरे सुत के
तन पर है स्मृति-चिह्न अलंकृत।

———

सुभद्रा कुमारी चौहान

झाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरङ्गी को करने की सब ने मन में ठानी थी,

चमक उठी सन सत्तावन में
वह तलवार पुरानी थी !
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी ॥

कानपूर के नाना की मुँहबोली बहन 'छबीली' थी,
लक्ष्मी बाई नाम, पिता की वह सन्तान अकेली थी,
नाना के सँग पढ़ती थी, वह नाना के सँग खेली थी,
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी,

वीर शिवा जी की गाथाएँ
उसको याद ज़बानी थीं
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी ।

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध, व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना, ये थे उसके प्रिय खिलवार,

महाराष्ट्र-कुल-देवी उसकी
भी आराध्य भवानी थी ।
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी ॥

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मीबाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियाँ छाई झाँसी में,
सुभट बुँदेलों की विरुदावलि-सी वह आई झाँसी में,

चित्रा ने अर्जुन को पाया,
शिव से मिली भवानी थी।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियाली छाई,
किन्तु काल गति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई,
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाईं,
रानी विधवा हुई हाय! विधि को भी नहीं दया आई,

निःसन्तान मरे राजा जी
रानी शोक-समानी थी।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी॥

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौज़ी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अच्छा अवसर पाया,
फौरन फ़ौजें भेज दुर्ग पर अपना झण्डा फहराया,
लावारिस का वारिस बन कर ब्रिटिश राज्य झाँसी आया,

अश्रुपूर्ण रानी ने देखा
झाँसी हुई बिरानी थी।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

अनुनय विनय नहीं सुनता है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था जब यह भारत आया,
डलहौज़ी ने पैर पसारे अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी अपने पैरों ठुकराया,

रानी दासी बनी, बनी यह
दासी अब महारानी थी।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

छिनी राजधानी देहली की लखनउ छीना बातों-बात,
कैद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर का भी घात,
उदैपूर, तँजोर, सतारा, करनाटक की कौन बिसात,
जब कि सिंध, पंजाब, ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र निपात

बंगाले, मद्रास आदि की
भी तो वही कहानी थी।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी॥

रानी रोई रनिवासों में, बेगम ग़म से थी बेज़ार,
उनके गहने-कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाज़ार,
सरे-आम नीलाम छापते थे अंग्रेज़ों के अख़बार,
'नागपूर के ज़ेवर ले लो' 'लखनउ के लो नौलख हार'

यों परदे की इज़्ज़त परदेसी
के हाथ बिकानी थी।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी॥

कुटियों में थी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान,
नाना धुन्धूपन्त पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रण-चण्डी का कर दिया प्रकट आह्वान,

हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो
सोई ज्योति जगानी थी।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी॥

महलों ने दी आग, झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतंत्रता की चिनगारी अन्तरतम से आई थी,
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनउ लपटें छाई थीं,
मेरठ, कानपूर, पटना ने भारी धूम मचाई थी,

जबलपूर, कोल्हापुर में भी
कुछ हलचल उकसानी थी।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी॥

इस स्वतंत्रता-महायज्ञ में कई वीरवर आए काम,
नाना धुन्धूपन्त, ताँतियाँ, चतुर अज़ीमुल्ला सरनाम,
अहमद शाह मौलवी, ठाकुर कुँवर सिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास—गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम,

लेकिन आज जुर्म कहलाती
उनकी जो कुरबानी थी ।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी ।।

इनकी गाथा छोड़ चलें हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मी बाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ़्टिनैण्ट वॉकर आ पहुँचा, आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींचली, हुआ द्वन्द असमानों में,

ज़ख्मी होकर वॉकर भागा
उसे अजब हैरानी थी ।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी ।।

रानी बढ़ी, कालपी आई, कर सौ मील निरन्तर पार,
घोड़ा थक कर गिरा भूमि पर, गया स्वर्ग तत्काल सिधार,
यमुना-तट पर अँग्रेज़ों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार,

अँग्रेज़ों के मित्र सेंधिया
ने छोड़ी रजधानी थी।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी॥

विजय मिली, पर अँग्रेज़ों की फिर सेना घिर आई थी,
अबके जनरल स्मिथ सन्मुख था, उसने मुँह की खाई थी,
काना और मन्दरा सखियाँ रानी के सँग आई थीं,
युद्धक्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी,

पर, पीछे ह्यूरोज़ आ गया,
हाय! घिरी अब रानी थी।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी॥

तो भी रानी मार-काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था यह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आ गये सवार,
रानी एक, शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार पर वार,

घायल होकर गिरी सिंहिनी
उसे वीर-गति पानी थी ।
बुँदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी ॥

रानी गई सिधार, चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आई बन स्वतंत्रता नारी थी,

दिखा गई पथ सिखा गई
हमको जो सीख सिखानी थी ।
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी ॥

जाओ रानी, याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतन्त्रता अविनाशी,
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी ।

तेरा स्मारक तू ही होगी,
तू खुद अमिट निशानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी॥

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

विप्लव-गायन

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए,
एक हिलोर इधर से आए एक हिलोर उधर से आए,
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए,
नाश और सत्यनाशों का धुआँधार जग में छा जाए,
बरसे आग, जलद जल जाएँ, भस्मसात् भूधर हो जाएँ,
पाप, पुण्य, सदसद्भावों की धूल उड़ उठे दाएँ-बाएँ,
नभ का वक्षस्थल फट जाए, तारे टूक टूक हो जाएँ,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए ।।

माता की छाती का अमृतमय पय कालकूट हो जाए,
आँखों का पानी सूखे वे शोणित की घूँटें हो जाए,
एक ओर कायरता काँपे, गतानुगति विगलित हो जाए,
अन्धे मूढ़ विचारों की वह अचल शिला विचलित होजाए,
और दूसरी ओर कँपा देने वाला गर्जन उठ धाए,
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराए,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए ।।

नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक-टूक हो जाएँ,
विश्वम्भर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएँ,
शान्ति दण्ड—टूटे उस महारुद्र का सिंहासन थर्राए,
उसकी श्वासोच्छ्वासदाहिका जग के प्रांगण में घहराए,
नाश ! नाश !! हां महानाश !!! की प्रलयंकरी आँख खुल जाए,
कवि,कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए !!

सावधान ! मेरी वीणा में चिनगारियाँ आन बैठी हैं,
टूटी हैं मिजराबें, युगलाँगुलियाँ ये मेरी ऐंठी हैं,
कण्ठ रुका है महानाश का मारक गीत रुद्ध होता है,
आग लगेगी क्षण में, हृत्तल में अब क्षुब्ध युद्ध होता है,
झाड़ और झँखाड़ दग्ध हैं इस ज्वलन्त गायन के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है निकली मेरे अन्तरतर से ।

कण-कण में है व्याप्त वही स्वर रोम रोम गाता है वह ध्वनि
वही तान गाती रहती है कालकूट फणि की चिन्तामणि
जीवन ज्योति लुप्त है अहा ! सुप्त हैं संरक्षण की घड़ियाँ,
लटक रही हैं प्रतिपल में इस नाशक संभक्षण की लड़ियाँ ।।
चकनाचूर करो जग को गूँजे ब्रह्माण्ड नाश के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान निकली है मेरे अन्तर तर से ।।

दिल को मसल-मसल मैं मेंहदी रचवा आया हूँ यह देखो,
एक-एक अँगुलि परिचालन में नाशक ताँडव को पेखो ।

विश्वमूर्ति ! हट जाओ यह मम भीम प्रहार सहे न सहेगा,
टुकड़े-टुकड़े हो जाओगी, नाश-मात्र अवशेष रहेगा ।
आज देख आया हूँ जीवन के सब राज़ समझ आया हूँ,
भ्रूविलास में महानाश के पोषक सूत्र परख आया हूँ ।
जीवन गीत भुला दो-कण्ठ मिला दो, मृत्यु गीत के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है निकली मेरे अन्तरतर से ।।

शिखर पर

चढ़ चल, चढ़ चल, थक मत, रे बलि वध के सुन्दर जीव,
उच्च कठोर शिखर के ऊपर है मन्दिर की नींव,
बड़े बड़े ये शिलाखण्ड मग रोके पड़े अचेत,
इन्हें लाँघ तू, यदि जाना है तुझे मरण के हेत,

ऊपर, अगम शिखर के ऊपर, मचा मृत्यु का रास;
नीचे, उपत्यका में, जीवन-पंकिल का है त्रास ।

चढ़ चल, चढ़ चल, थक मत, रे तू बलिदानों के पुञ्ज,
देख कहीं न लुभावे तुझको यह जीवन की कुञ्ज,
मधुर मृत्यु का नृत्य देख तू देने लग जा ताल,
अपना सीस पिरो कर कर दे पूरी माँ की माल,

है जीवन अनित्य, कट जाने दे तू मोहक बन्ध,
करदे पूरा आत्मनिवेदन का तू आज प्रबन्ध ।

———

श्रीमन्नारायण अग्रवाल

(रोटी का राग)

रहसवाद को हम क्या समझें ?
पढ़ना हमने कभी न जाना,
हमने तो काला अक्षर, कवि
भैंस बराबर ही था जाना,
क्या 'अनन्त' उसका आकार तक,
हमने नहीं कभी पहचाना,
मधुबाला से फिर क्यों उलझें ?
रहसवाद को हम क्या समझें ?
हमको तो दुख ही है पाना,
कड़ी भूमि में बैल जोतकर
खुद मिहनत कर हल चलवाना
कवि ! पंखों से उड़ 'अतीत' की,
छाया को तुमने ही जाना !
रोटी से तो पहले सुलझें,
रहसवाद को तब हम समझें !

(२)

हम तो रोटी के मतवाले !
नहीं चाह मदिरा की साक़ी,
क्या होंगे यह प्याले ?
सुरापान कर जीवन के दुख
नहीं भूलना हमको,
हम तो दुख-जीवन के प्रेमी,
गावें राग निराले !
विस्मृति के सागर में बहना,
हम अति तुच्छ समझते,
कंटकमय जीवन-पथ चलते,
पड़े पदों में छाले,
इन काँटों की पीर जगाने,
को खाते हम रोटी
पाकर जीवन-दान उसी में,
हो जाते मतवाले !

———

निराशावाद

जयशंकर प्रसाद

आँसू

रजनी की रोई आँखें,
आलोक बिन्दु टपकातीं।
तम की काली छलनायें,
उन को चुप-चुप पी जातीं॥
सुख अपमानित करता सा,
जब व्यंग्य हँसी हँसता है।
चुपके से तब मत रो तू,
यह कैसी परवशता है?
अपने आँसू की अञ्जलि;
आँखों में भर क्यों पीता।
नक्षत्र पतन के क्षण में,
उज्ज्वल होकर है जीता!
वह हँसी और यह आँसू,
घुलने दे—मिल जाने दे।
बरसात नई होने दे,
कलियों को खिल जाने दे।
चुन-चुन ले रे कन-कन से,
जगती की सजग व्यथायें।
रह जायेंगी कहने को,
जन रञ्जन करी कथायें।

सुमित्रानंदन पंत

(आँसू)

कल्पना में है कसकती वेदना, अश्रु में जीता सिसकता गान है।
शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं, मधुर लय का क्या कहीं अवसान है!
वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान;
उमड़ कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान॥

हाय! किसके उर में
उतारूँ अपने उर का भार!
किसे अब दूँ उपहार,
गूँथ यह अश्रुकणों का हार!

महादेवी वर्मा

मुर्झाया फूल

था कली के रूप शैशव—
में अहो सूखे सुमन!
हास्य करता था, खिलाती
अंक में तुझ को पवन।
खिल गया जब पूर्ण तू--
मञ्जुल सुकोमल पुष्पवर!
लुब्ध मधु के हेतु मँडराते
लगे आने भ्रमर।
स्निग्ध किरणें चन्द्र की—
तुझ को हँसाती थीं सदा।
रात तुझ पर वारती थी
मोतियों की सम्पदा।
लोरियाँ गाकर मधुप
निद्रा विवश करते तुझे,
यत्न माली का रहा--
आनन्द से भरता तुझे।

कर रहा अटखेलियां—
इतरा सदा उद्यान में।
अंत का यह दृश्य आया—
था कभी क्या ध्यान में?

सो रहा अब तू धरा पर—
शुष्क बिखराया हुआ,
गन्ध कोमलता नहीं
मुख मंजु मुरझाया हुआ।

आज तुझको देख कर
चाहक भ्रमर धाता नहीं,
लाल अपना राग तुझ पर,
प्रात बरसाता नहीं।

जिस पवन ने अंक में—
ले प्यार था तुझको किया।
तीव्र झोंके से सुला—
उसने तुझे भूपर दिया।

कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन,
किन्तु रोता कौन है
तेरे लिए दानी सुमन?

मत व्यथित हो फूल ! किसको
सुख दिया संसार ने
स्वार्थमय सबको बनाया—
है यहां करतार ने।

विश्व में है फूल ! तू—
सब के हृदय भाता रहा !
दान कर सर्वस्व फिर भी—
हाय हरषाता रहा।
जब न तेरी ही दशा पर
दुख हुआ संसार को,
कौन रोयेगा सुमन
हम से मनुज निःसार को ?

(एक गीत)

मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का !
जाने क्यों कहता है कोई
मैं तम की उलझन में खोई,

धूममयी वीथी वीथी में लुक छिप कर विद्युत-सी रोई !
मैं कण कण में ढाल रही, अलि, आँसू के मिस प्यार किसी का ?
रज में शूलों का मृदु चुंबन,
नभ में मेघों का आमंत्रण;

आज प्रलय का सिंधु कर रहा मेरी कंपन का अभिनंदन।
लाया झंझा-दूत सुरभिमय साँसों का उपहार किसी का।
पुतली ने आकाश चुराया,
उर ने विद्युत-लोक छिपाया;

अंगराग-सी है अंगों में सीमाहीन उसी की छाया।
अपने तन पर भाता है अलि,जाने क्यों शृङ्गार किसी का ?
मैं कैसे उलझूँ ! इति-अथ में,
गति मेरी है संसृति-पथ में,

बनता है इतिहास मिलन का प्यास भरे अभिसार अकथ में।
मेरे प्रति पग पर बसता जाता सूना संसार किसी का।

तारा-पांडे

(१)

कैसे हँसूँ, बता दो ना !

जीवन में उत्साह नहीं है,
रचित सुखकी राह नहीं है,
जी-भर हँसूँ, चाहती जी से,
कोई युक्ति बता दो ना !

किसे नहीं इच्छा हँसने की,
भाता किसे वेदना का जी,
इस असमर्थ हृदय को मेरे
तुम्हीं समर्थ बना दो ना !

बरबस हँसी खेलती मुख पर,
आँखों में रहती आँसू भर,
कैसे रोकूँ यह दुर्बलता
मुझे तुम्हीं बतला दो ना !

दुखको सुख कैसे मैं मानूँ ?
सुख-दुख मिथ्या कैसे जानूँ ?
अब तक सीख नहीं पाई हूँ
यह सब तुम्हीं सिखा दो ना !

(२)

मैने सोचा था,—हूँ जग से
शीघ्र विदा होने वाली,
हँसना मेरा नहीं जगत में
मैं तो हूँ रोने वाली !

चारों ओर घिरे थे मेरे
अन्धकार के बादल घोर,
नहीं सूझता था तब कुछ भी
आशा-अभिलाषा का छोर !

मैं निराश थी इस जीवन से
सूना था मेरा संसार,
निकल रही थी भग्न-हृदय से
अस्फुट और करुण झँकार !

हाथ जोड़ निज अन्तरतम से
मैंने बिनती की बहुबार,
हे प्रभु ! मुझे बचाओ दुख से
अथवा करो जगत के पार !

अपने उस अशान्त जीवन में
मुझको फिर से शान्ति मिली,
कण-कण के सूनेपन में ही
मुखरित स्वर्गिक कान्ति मिली !

बादल हटे, प्रकाश हुआ कुछ,
अन्धकार भी दूर हुआ,
आशा औ, अभिलाषाओं से
सूना-उर भरपूर हुआ !

हँसना-रोना दोनों मेरे,
मैं सुख-दुख की मतवाली,
जग में रहकर भी हूँ जग से
बहुत दूर रहने वाली !

(परिचय)

चूर हो गया हृदय आज—
सोई पीड़ा जग जाने से।
निष्ठुर मुझे सताते तुम,
जाने अथवा अनजाने से॥

तुम भी सोच रहे हो, ऐसा
समय नहीं फिर आवेगा।
जितना चाहें इसे सता लें,
कौन इसे समझावेगा॥

सूनेपन में ही, अब तो,
अपना प्यारा संसार किया।
नभ के तारों से मैंने,
निज आँसू का व्यापार किया॥

बहिर्जगत में दिखलाने को,
शशि-किरणों से सीखा हास।
जिससे दुखी न समझे-कोई,
दे दे थोड़ा-सा उल्लास॥

जीवन की कुछ चाह नहीं,
अभिलाषाओं का तार हुआ।
झूठे जग को निरख-निरख कर
पागल-सा यह प्यार हुआ॥

परिचय मेरा सुनो यही
मैं स्वप्न जगत की हूँ रानी।
सखी, निराशा के संग मैं—
फिरती रहती हूँ दीवानी॥

———

रामेश्वरी देवी 'चकोरी'

(एक घूँट)

भव-सागर के तट पर अजान,
सुनती हूँ वह कलरव महान;
एकाकी हूँ, कोई न संग;
उठती है रह-रह भय-तरंग ।
केवल यौवन का भार लिए,
बैठी हूँ, सूना प्यार लिए ।

करते बादल हैं अश्रुदान; घन का सुनती गर्जन महान ।
आती है तड़ित चिराग़ लिए; बिछुड़ी स्मृति का अनुराग लिए ।

बुझ जाता है वह भी प्रकाश;
होता है भीषण अट्टहास ।
मारुत का वेग प्रचंड हुआ;
वह उदधि-हृदय भी खंड हुआ;
ओढ़े काले रँग का दुकूल
है अंत-हीन-सा सिंधु-कूल ।

उत्ताल तरंगें बढ़ आईं छूने को मेरी परछाईं,
उन संभ्रम शिथिल झकोरों को, ममता-सी मृदुल हिलोरों को,

लेकर सब शून्य उमंगों को
पकड़ा उन तरल तरंगों को।
बह चली त्याग पीड़ा विषाद;
हो गई विसुध मिट गई साध।
सहसा कानों में उषा-गान
झनझना उठा छू शिथिल प्राण।

सागर की धड़कन शांत हुई, वह स्वप्न-नाटिका भ्रांत हुई।
खिलखिला उठा जग एक बार, आ पहुँचा मेरा कर्णधार।

यौवन-कलिका थी जाग उठी;
लहरों की शय्या त्याग उठी।
अर्पण कर प्रेम-पराग मुझे
नाविक ने दिया सुहाग मुझे।
नाविक की वह पतवार-हीन
नौका थी जर्जर अति मलीन।

द्रुत गति से नौका बहती थी, कुछ मौन स्वरों में कहती थी।
इस बार तरंगें मचल पड़ीं, तरणी के पथ में अचल खड़ीं।

मैं काँप उठी, उद्भ्रांत हुई,
जर्जर नौका भी श्रांत हुई।

रक्षक भी मेरा था अधीर;
दृग-कोरों से बह चला नीर,
सहसा तरणी जल-मग्न हुई !
छाया-सी क्षण में भग्न हुई !

प्राची में अरुण मुस्कराया; लहरों ने प्रलय-गान गाया ।
मेरा नाविक बह गया कहीं; जीवन सूना रह गया वहीं ।

फिर बिखरा दी संचित उमंग;
ले गई उसे भी जल-तरंग ।
मैंने हो पथ-दर्शक विहीन
कर दिया सिंधु में आत्मलीन !
कितना अथाह ! कितना अपार !
ले चली मुझे भी एक धार !

छूटें, भव-बंधन चाह नहीं; हो जाय प्रलय, परवाह नहीं !
जाती हूँ अब उस पार वहाँ, है मेरा प्राणाधार जहाँ !

(प्रतिरोध)

अरे, छेड़ मत इस तंत्री के अस्त-व्यस्त हैं तार !
रहने दे, रहने दे, अपना झूठा क्षणिक दुलार !
मत दिखला मुझको सुख स्वप्नों का सुन्दर संसार ।
अरे, प्रलोभन-पूर्ण हटा ले जा अपना उपहार ।

नहीं चाहिए मुझको तेरा वैभव-पूर्ण विषाद !
हाय ! चेतना हीन करेगा, यह है कैसा नाद !

यहीं ध्वंस हो जाने दे चिर-संचित मधुर उमंगें !
यहीं लीन होने दे इच्छाओं की तरल तरंगें !
दूर दूर, मत रोक मुझे, इस सरिता में बहने दे !
मौन स्वरों में विस्मृति की वह करुणकथा कहने दे !

हरबंसराय 'बच्चन'

तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण !

(१)

रात का अन्तिम प्रहर है,
झिलमिलाते हैं सितारे,
वक्ष पर युग बाहु बांधे
मैं खड़ा सागर किनारे,
वेग से बहता प्रभंजन
केश-पट मेरे उड़ाता,
शून्य में भरता उदधि—
उर की रहस्यमयी पुकारें
इन प्रकारों की प्रतिध्वनि
हो रही मेरे हृदय में,
है प्रतिच्छायित जहां पर
सिन्धु का हिल्लोल—कंपन ।
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

(२)

विश्व की सम्पूर्ण पीड़ा
सम्मिलित हो रो रही है,
शुष्क पृथ्वी आँसुओं से,
पाँव अपना धो रही है,
इस धरा पर जो बसी दुनिया
यही अनुरूप उसके—
इस व्यथा से हो न विचलित
नींद सुख की सो रही है;
क्यों धरणि अब तक न गलकर
लीन जलनिधि में गई हो ?
देखते क्यों नेत्र कवि के
भूमि पर जड़-तुल्य जीवन ?
तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण।

(३)

जड़-जगत में वास कर भी
जड़ नहीं व्यवहार कवि का,
भावनाओं से विनिर्मित
और ही संसार कवि का,
बूँद के उच्छ्वास को भी
अनसुनी करता नहीं वह

किस तरह होता उपेक्षा—
पात्र पारावार कवि का !
विश्व-पीड़ा से सुपरिचित
हो तरल बनने, पिघलने
त्याग कर आया यहाँ कवि
स्वप्न लोकों के प्रलोभन।
तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण !

(४)

जिस तरह मरु के हृदय में
है कहीं लहरा रहा सर,
जिस तरह पावस-पवन में
है पपीहे का छिपा स्वर,
जिस तरह से अश्रु-आहों से
भरी कवि की निशा में
नींद की परियाँ बनातीं
कल्पना का लोक सुखकर,
सिन्धु के इस तीव्र हाहा—
कार ने, विश्वास मेरा,
है छिपा रखा कहीं पर
एक रस-परिपूर्ण गायन
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

(५)

नेत्र सहसा आज मेरे
तम-पटल के पार जाकर
देखते हैं रत्न-सीपी से
बना प्रासाद सुन्दर

है खड़ी जिसमें उषा ले
दीप कुंचित रश्मियों का,

ज्योति में जिसकी सुनहली
सिन्धु-कन्याएँ मनोहर

गूढ़ अर्थों से भरी
मुद्रा बनाकर गान करतीं

और करतीं अति अलौकिक
ताल पर उन्मत्त नर्तन !
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण ।

(६)

मौन हो गन्धर्व बैठे
कर श्रवण इस गान का स्वर
वाद्य-यन्त्रों पर चलाते
हैं नहीं अब हाथ किन्नर,

अप्सराओं के उठे जो
पग, उठे ही रह गये हैं,

कर्ण उत्सुक, नेत्र अपलक
साथ देवों के पुरन्दर
एक अद्भुत और अविचल
चित्र सा है जान पड़ता,
देव-बालाएँ विमानों से
रहीं कर पुष्प-वर्षण !
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

(७)

दीर्घ उर में भी जलधि के
हैं नहीं खुशियाँ समातीं,
बोल सकता कुछ न, उठती
फूल बारम्बार छाती ।
हर्ष रत्नागार अपना
कुछ दिखा सकता जगत को,
भावनाओं से भरी यदि
यह फफक कर फूट जाती ।
सिन्धु जिस पर गर्व करता
और जिसकी अर्चना को
स्वर्ग झुकता, क्यों न उसके
प्रति करे कवि अर्घ्य-अर्पण,
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

(८)

आज अपने स्वप्न को मैं,
सच बनाना चाहता हूँ,
दूर की इस कल्पना के,
पास जाना चाहता हूँ,
चाहता हूँ तैर जाना
सामने अंबुधि-पड़ा जो,
कुछ विभा उस पार की
इस पार लाना चाहता हूँ,
स्वर्ग के भी स्वप्न भू पर
देख उनसे दूर ही था,
किन्तु पाऊँगा नहीं कर
आज अपने पर नियन्त्रण।
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण

(९)

लौट आया यदि वहाँ से
तो यहाँ नवयुग लगेगा,
नव प्रभाती गान सुनकर
भाग्य जगती का जगेगा,
शुष्क जड़ता शीघ्र बदलेगी
सरस चैतन्यता में,

यदि न पाया लौट मुझ को
लाभ जीवन का मिलेगा,
पर पहुँच ही यदि न पाया
व्यर्थ क्या प्रस्थान होगा ?
कर सकूँगा विश्व में फिर-
भी नए पथ का प्रदर्शन
तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण !

(१०)

स्थल गया है भर पथों से
नाम कितनों के गिनाऊँ;
स्थान बाकी है कहाँ, पथ
एक अपना ही बनाऊँ ?
विश्व तो चलता रहा है,
थाम राह बनी-बनाई,
किन्तु इन पर किस तरह मैं
कवि-चरण अपने बढ़ाऊँ !
राह जल पर भी बनी है,
रूढ़ि पर न हुई कभी वह,
एक तिनका भी बना सकता
यहाँ पर मार्ग नूतन !
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

(११)

देखता हूँ आँख के आगे
नया यह क्या तमाशा-
कर निकल कर दीर्घ जल से
हिल रहा करता मना-सा
है हथेली-मध्य चित्रित
नीर-मग्न प्राय बेड़ी !
मैं इसे पहचानता हूँ
है नहीं क्या यह निराशा ?
हो पड़ीं उद्दाम इतनी
उर-उमंगें, अब न उनको
रोक सकता भय-निराशा का
न आशा का प्रवंचन ।
तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण !

(१२)

पोत अगणित इन तरंगों ने
डुबाये, मानता मैं,
पार भी पहुँचे बहुत-से
बात यह भी जानता मैं,
किन्तु होता सत्य यदि यह
भी, सभी जलयान डूबे

पार जाने की प्रतिज्ञा
आज बरबस ठानता मैं
डूबता मैं, किन्तु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा,
हों युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन !
तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमंत्रण

(१३)

आ रहीं प्राची क्षितिज से
खींचने वाली सदाएँ,
मानवों के भाग्य-निर्णायक
सितारो ! दो दुआएँ,
नाव, नाविक, फेर ले जा
है नहीं कुछ काम इसका,
आज लहरों से उलझने को
फड़कती हैं भुजाएँ,
प्राप्त हो उस पार भी इस
पार सा चाहे अँधेरा
प्राप्त हो युग की उषा
चाहे लुटाती नव-किरण धन !
तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

(१)

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।
हो जाय न पथ में रात कहीं,
मंज़िल भी तो है दूर नहीं—

यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी-जल्दी चलता है।
दिन जल्दी जल्दी ढलता है।

(२)

बच्चे प्रत्याशा में होंगे;
नीड़ों से झांक रहे होंगे—

यह ध्यान, परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।

(३)

मुझसे मिलने को कौन विकल?
मैं होऊँ किस के हित चंचल?—

यह प्रश्न शिथिल करता पद को; भरता उर में विह्वलता है।
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है।

भगवतीचरण वर्मा

हम दीवानों की क्या हस्ती,
हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले;
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले;
आए बनकर उल्लास अभी,
आँसू बनकर बह चले अभी;
सब कहते ही रह गये, अरे
तुम कैसे आए कहाँ चले?
किस ओर चले?—यह मत पूछो,
चलना है बस इस लिए चले;
जग से उसका कुछ लिए चले,
जग को अपना कुछ दिए चले;
दो बात कही दो बात सुनी;
कुछ हँसे और फिर कुछ रोए!
छककर सुख-दुख के घूँटों को
हम एक भाव से पिए चले!

हम भिखमंगों की दुनियाँ में
स्वच्छन्द लुटाकर प्यार चले;
हम एक निशानी-सी उर पर
ले असफलता का भार चले;
हम मान-रहित, अपमान-रहित
जी भरकर खुलकर खेल चुके;
हम हँसते-हँसते आज यहाँ
प्राणों की बाज़ी हार चले !

हम भला-बुरा सब भूल चुके,
नत-मस्तक हो मुख मोड़ चले,
अभिशाप उठाकर होठों पर,
वरदान दृगों से छोड़ चले;
अब अपना और पराया क्या ?
आबाद रहें रुकने वाले,
हम स्वयम् बँधे थे, और स्वयम्
हम अपने बँधन तोड़ चले !

(१)

मैं एकाकी--है मार्ग अगम,
है अन्तहीन चलते जाना,
नभ में व्यापकता का सँदेश,
क्षिति में सीमा से टकराना

उजले दिन काली रातों में;
लय हो जाते हैं हास-रुदन,
धुँधली बन कर इन आँखों ने
केवल सूनापन पहचाना।
है उस जीवन का बोझ असह,
मैं निर्बलता से चूर प्रिये!
उर शंकित है, पग डगमग हैं,
तुम मुझ से कितनी दूर प्रिये!

(२)

लेकर अक्षय विश्वास, अरे!
उस दिन जब पत्थर से दिल में
मैंने जागृति का पाठ पढ़ा
सोने वालों की महफ़िल में;
भेदन करना है अंधकार!
तब पागल-सा मैं बोल उठा;
कब सोचा था डिग जाऊँगा
मैं बस पहिली ही मंज़िल में?
उस पार!--अरे उस पार कहाँ?
है अंतहीन इस पार प्रिये!
पैरों में ममता का बंधन,
सिर पर वियोग का भार प्रिये!

(३)

अब असह अबल अभिलाषा का
है सबल नियति से संघर्षण;
आगे बढ़ने का अमिट नियम,
पग पीछे पड़ते हैं प्रतिक्षण;

पर यदि सम्भव ही हो सकता
केवल पल-भर पीछे हटना—
तो बन जाता वरदान अमर,
यह सबल तुम्हारा आकर्षण !
मैं एक दया का पात्र अरे,
मैं नहीं रंच स्वाधीन प्रिये !
हो गया विवशता की गति में
बँधकर हूँ मैं गतिहीन प्रिये !

(४)

शशि एकाकी मिटता रहता,
रवि एकाकी जलता रहता,
मरु एकाकी आहें भरता,
हिम एकाकी गलता रहता;
कोयल एकाकी रो देती,
कलि एकाकी मुरझा जाती,
एकाकी पन में बनने का,
मिटने का क्रम चलता रहता !

एकाकी पन ही अपना पन,
मैं अपने से मजबूर प्रिये !
उर शंकित है, पग डगमग हैं,
तुम होती जाती दूर प्रिये !

———

उदयशंकर भट्ट

विदा

(१)

सोजाने को जगता है,
मेरा जीवन मतवाला ।
खाली कर देने को ही,
साक़ी भर देती प्याला ।

खिलते हैं मुरझाने को,
दो दिन के जग पर हँसकर ।
लुटते थे फूल लुटा सब,
अपने दुलार पृथ्वी पर ।

(२)

मेरे अलमस्त रुदन पर,
आँसू मोती बन जाते ।
दो सीपों में ढल ढल कर,
जग में रोना बिखराते ।

अरमानों की नौका पर,
हम जाने को हैं आये।
वरदान बुलाने पहुँचे,
अभिशाप छोड़ने आये।

(३)

रोकर इस हँसते जग का,
आते दुलार था पाया।
मेरे हँसकर जाते ही,
रोने को रोना आया।

जी-भर कर देख लिया,
सब दोपहरी यहीं बिताई।
संध्या ले चली चले हैं,
ऊषा लेकर थी आई।

उस ओर

मैं क्या बतलाऊँ कहाँ वास
अति दूर क्षितिज से दूर दूर
अनुमान दौड़ थक हुए चूर,
नक्षत्रों के ढीले सरूर,
होते समाप्त जग के ग़रूर,
रहती जग की जगमग निराश।
उस ओर, इधर मेरा निवास।

मानस कमलों से उठ अजान,
सौरभ अमन्द भर भर उड़ान,
सौन्दर्य-प्रेम के अमल गान,
गूँजा करते जिस नभ-महान
जग की आँखों में बन बिहान,
है अमर रश्मियों का प्रकाश,
रहता हूँ उसके आस पास।

स्वर्णादियों के कण लिये वात,
कुसुमित केशर की भर परात,
झरनों से बहती जहाँ प्रात,
अयि सजनी, वहाँ सन्ध्या न रात!!
सब स्वर्ग जहाँ करते विलास,
उस आँगन में मेरा निवास।

अनवद्य कल्पनाएँ उभार,
कलि किंजल्कों से विंध उदार,
रवि किरण गूँथती बार बार,
मृदु मंजु कला के कण्ठहार,
इस पार नहीं उस विश्व पार,
उड़ते न मर्त्य रवि समुच्छ्वास,
उस ओर उधर मेरा निवास।

———

सियारामशरण गुप्त

वंचित

चढ़कर दूहों पर, खड्डों में उतरके,
वक्र पथ सौ सौ पार करके,
घूम-फिर हिंस्र जन्तुओं से भरी झाड़ियाँ,
छान डालीं दुर्गम पहाड़ियाँ।
किन्तु जिसकी थी चाह,
पारस मिला न आह !

अन्ध कारागार में से छूट कर,
ऊपर से टूट कर,
हर-हर-नादिनी
दौड़ती हुई-सी जहाँ बहती थी ह्लादिनी ;
पत्थरों के साथ टकराती हुई,
विजन वनों में बल खाती हुई,
अपने किनारे आप ही थपेड़,
भूपर गिराती हुई—
ऊँचे पेड़ ;
दूर तक घूम घूम खोज खोज मैं थका,
पारस वहाँ भी हा ! न पा सका।

क्षुब्ध, रुद्र
जान पड़ता था जहाँ भीषण महा समुद्र ;
अन्त-हीन यात्रा में भटक के,
लहरें भुजङ्गिनी-सी उठ फुफकार कर,
पार पर
क्रोध-भरी फन सा पटकके,
त्रस्त करती थीं जहाँ,
रात-दिन खोजता हुआ ही वहाँ
घूमता फिरा मैं भूल भूख प्यास,
छिन्नपद, छिन्नवास ।
किन्तु वह रत्नाकर
अन्त में प्रतीत हुआ शंख-शुक्तियों का घर ।
प्यासा ही रहा मैं वहाँ,
जान भी सका न यह पारस मिलेगा कहाँ ।

करके प्रयत्न सभी हार के,
अन्त में मैं लौटा, झख मार के ।
इतने दिनों की तपश्चर्या कड़ी,
जीवन की साधना कठोर यह ऐसी बड़ी
निष्फल हुई यों हाय !
बैठ गया मेरा मन भग्नप्राय ।

एक दिन अतल तड़ाग के किनारे क्लान्त
बैठा हुआ था मैं श्रान्त ।

आस-पास दूर तक शस्य-भरे,
शोभन, हरे-हरे
खेत लहराते थे ;
डालों के हिंडोरों पर
बैठे हुए विविध विहङ्ग वर
कल-कल-कूजन सुनाते थे ।
उठती तरंगें थीं सुनीर में
सन सन शब्द था समीर में ;
ऊपर सुनील महाकाश था ;
भूपर तड़ाग में भी वैसा ही विभास था ।

पत्थरों की सीढ़ी पर सुश्री-भरी
स्नान कर बैठी थी अपूर्व एक सुन्दरी ।
भीगा हुआ वस्त्र ही थी पहने ;
धारण किये हुए सुवर्ण-रंग ;
अङ्ग अङ्ग
उसके बने थे स्वयं गहने !
कलित कपोलों पर छूटे हुए केशदाम
हिल-डुल क्रीड़ा करते थे कान्त कान्तिधाम ।
उसमें से चूते हुए वारि-विन्दु झलमल
शोभा सरसाते थे,
प्रति पल
नये नये मोती प्रकटाते थे ।

बायाँ पैर नीचे लटकाये नील नीर पर,
दायाँ पैर रक्खे हुए सीढ़ी के प्रतीर पर,
अपने नुकीले नेत्र नीचे किये,
पत्थर की बट्टी हाथ में लिए
एड़ी मलती थी वह बार बार पानी डाल।
एकाएक हो गया विचित्रतर मेरा हाल!
काँप उठा सारा तन सहसा उसे निहार,
वार वार
देखी वह बट्टी जब दृष्टि फेंक,
संशय रहा न नेक,—
यत्न सब कर कर
खोजता फिरा मैं जिसे जन्म भर
पारस वही है, यह है वही।
मेरी तप-साधना का श्रेष्ठ फल है यही।

छोड़ निज ग्राम-गेह,
तप में तपाके देह
रात-दिन तेरा ध्यान ही किये,
हे सुरत्न, तेरे लिए
घूमा फिर दूर दूर कितना कहाँ कहाँ,
तू तो अरे, था समीप ही यहाँ!
होने लगा मस्तक विघूर्णमान;
रत्न यह अतुल महा महान
हस्तगत कैसे कर पाऊँ मैं?

लक्ष्मि, क्या उठेगी न तू साङ्ग निज स्नान कर,
कब तक बैठी ही रहेगी इसी स्थान पर ?
पैर मलती तू और मैं हूँ हाथ मलता,
पल पल का भी है विलम्ब मुझे खलता ।
छोड़, अरी छोड़, इसे छाती से लगाऊँ मैं !

एकाएक कर के समाप्त काम,
अविराम
फेंक दिया उसने सुरत्न बीच जल में ।
हँसता हुआ-सा, व्यङ्ग्य-नाद कर,
—डाल मनों पानी उस मेरे महाह्लाद पर—
डूबा वह सत्वर अतल में !

वार वार
छाती पर घूँसा मार ;
ज़ोर से मैं चीख पड़ा,—
"सुन्दरी, अनर्थ यह कैसा किया तूने बड़ा ?
तेरे हाथ में था रत्न जो अभी,
त्रिभुवन की श्री सभी
उसके समक्ष थी नितान्त हेय
पारस निरुपमेय
फेंक दिया तूने अरी क्यों अथाह जल में ?
कैसा सर्वनाश किया तूने एक पल में !"

क्षण भर मौन रह,
नारी हँसी उच्च अट्टहास से,
और भी प्रदीप दन्तपंक्ति के प्रकाश से,
बोली वह ,—
"दोष किसे देता है अरे अपात्र ?
मेरे लिए तो था वह लोष्ठ मात्र ।
तू ही जान बूझ के छला गया,
तेरे हाथ से ही यह रत्न है चला गया।"

नीति-सूक्ति

रहीम

सूक्तिसुमन

जे गरीब सों हित करें, धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई जोग॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोइ।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होइ॥
कहि रहीम इक दीप ते, प्रकट सबै निधि होइ।
तनु सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोइ॥
तरुवर फल नहि खात हैं, सरवर पियहिं न पानि।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजानि॥
खीरा सिर तें काटि कै, मलियत नमक लगाइ।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत इहै सजाइ॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सके कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥
प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि आप पथिक फिरि जाय॥

मानसरोवर ही मिले, हंसनि मुक्ता-भोग।
सफरिन भरे रहीम सर, बक बालकनहिं जोग॥
ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कुपूत गति सोय।
बारे उजियारो करै, बढ़े अँधेरो होय॥
अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़न के जोर।
ज्यों ससि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर॥
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहिं सब ताहि॥
ससि की शीतल चाँदनी, सुंदर सबहिं सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय॥
रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥
धन दारा अरु सुतन में, रहत लगाये चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिनको मित्त॥
खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मद-पान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान॥
अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम॥
अंतर दाव लगी रहै, धुआँ न प्रगटै सोय।
कै जिय जाने आपनो, जा सिर बीती होय॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन बिगरे दूध को, मथे न माखन होय॥

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोय॥
अब रहीम चुप करि रहो, समुझि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर॥
रहिमन खोजो ऊख में, जहाँ रसन की खान।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति की हानि॥
रहिमन धागा प्रेम को, मत तोरो चटकाय।
टूटे से फिर नहिं मिलै, मिलै गाँठ परि जाय॥
रहिमन इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन परे पहार॥
रहिमन रिस को छाँड़िकै, करो गरीबी भेस।
मीठे बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस॥
जलहि मिलाय रहीम ज्यों, कियो आप सम छीर।
अँगवहि आपुहि आप त्यों, सकल आँच की भीर॥
जहाँ गाठ तहँ रस नहीं, यह जानत सब कोय।
मँडुए तर की गाँठ में, गाँठि-गाँठि रस होय॥
रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहैं तो हरि नहीं, हरि तो आपन नाहिं॥

वृंद

नीति रत्नावली

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस शृँगार न सुहात॥
फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचारि।
सबको मन हर्षित करै, ज्यों विवाह में गारि॥
जाही ते कछु पाइये, करिये ताकी आस।
रीते सरवर पै गये, कैसे बुझत पियास॥
कैसे निबहै निबल जन, करि सबलन सों वैर।
जैसे बसि सागर विषे, करत मगर सों वैर॥
अपनी पहुँच बिचारि कै, करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर॥
फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै व्यापार।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार॥
मधुर वचन ते जाय मिट, उत्तम जन अभिमान।
तनिक सीत जल सों मिटे, जैसे दूध उफान॥
दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता, कैसे हू सुख देत।
धोये हू सौ बेर के, काजर होय न सेत॥

जैसे बंधन प्रेम को, तैसो बंध न और।
काठहिं भेदै, कमल को, छेद न निकरै भौंर ॥
प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिलते न मिलाय।
दूध दही ते जमत है, काँजी ते फट जाय ॥
जो पावै अति उच्च पद, ताको पतन निदान।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लौं, अस्त होत है भान ॥
खल जन सों कहिये नहीं, गूढ़ कबहुँ करि मेल।
यों फैले जग माहिं ज्यों, जल पै बूँद कि तेल ॥
बिन स्वारथ कैसे सहे, कोऊ करुवे बैन।
लात खाय पुचकारिये, होय दुधारू धैन ॥
श्रम ही ते सब मिलत है, बिन श्रम मिले न काहिं।
सीधी अँगुरी घी जम्यो, क्यों हू निकरै नाहिं ॥
अपनी प्रभुता को सबै, बोलत झूठ बनाय।
वेश्या बरस घटावहीं, योगी बरस बढ़ाय ॥
कहूँ कहूँ गुन ते अधिक, उपजत दोष शरीर।
मीठी वाणी बोलि कै, परत पींजरा कीर ॥
मीठी कोऊ वस्तु नहिं, मीठी जाकी चाह ॥
अमली मिसरी छाँड़ि कै, आफू खात सराहि ॥
सुनिये सब ही की कही, करिये सहित विचार।
सर्व लोक राजी रहै, सो कीजै उपचार ॥
मति फिर जाय विपत्ति में, राव रंक इक रीत।
हेम-हरिन पाछे गये, राम गँवाई सीत ॥

यदपि सहोदर होय तउ, प्रकृति और की और।
विष मारे, ज्वावे सुधा, उपजे एक ही ठौर॥
अरि छोटो गनिये नहीं, जाते होत बिगार।
तृण समूह को छनिक में, जारत तनिक अँगार॥
सब देखै पै आपनो, दोष न देखै कोइ।
करे उजेरो दीप पै, तरे अँधेरो होइ॥
करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होत निशान॥
सुख दिखाय दुख दीजिये, खल सों लरिये काहि।
जो गुर दीने ही मरे, क्यों विष दीजै ताहि॥
कुल सुपूत जान्यो परत, लखि शुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात॥
बिना सिखाये लेत है, जिहिं कुल जैसी रीति।
जनमत सिंहन को तनय, गज पर चढ़त अभीति॥
जो धनवंत सु देय कछु, देय कहा धनहीन।
कहा निचोरै नग्न जन, स्नान सरोवर कीन॥
वह संपति केहि काम की, जनि काहू पै होइ।
नित्य कमावै कष्ट करि, विलसै और हि कोइ॥

———

गिरिधर कविराय

कुंडलियाँ

चिन्ता ज्वाल शरीर बन, दावा लगि लगि जाय।
प्रगट धुवाँ नहिं देखियत, उर अन्तर धुँधुवाय॥
उर अन्तर धुँधुवाय, जरै ज्यों काँच की भट्टी।
जरिगो लोहू माँस, रह गई हाड़ की ठट्टी।
कह गिरिधर कविराय, सुनो रे मेरे मिन्ता।
वे नर कैसे जियें, जाहि तन व्यापै चिन्ता॥

बनिया अपने बाप को, ठगत न लावै बार।
निसि बासर जननी ठगै, जहाँ लियो अवतार॥
जहाँ लियो अवतार, मास दस उदरे राखै।
गुरु से करै विवाद, आप पंडित ह्वै भाखै॥
कह गिरिधर कविराय, बेंचि हरदी औ धनिया।
मित्र जानि ठगि लेहि, जहाँ लग पावै बनिया॥

झूठा मीठे बचन कहि, ऋण उधार लै जाय।
लेत परम सुख ऊपजै, लै कै दियो न जाय॥

लै कै दियो न जाय; ऊँच अरु नीच बतावै।
ऋण उधार की रीति, माँगतै मारन धावै॥
कह गिरिधर कविराय, जानि रह मन में रूठा।
बहुत दिना ह्वै जाय, कहै तो कागद झूठा॥

सोना लेने पी गये, सूना करि गये देस।
सोना मिला न पी फिरे, रूपा ह्वै गये केस॥
रूपा ह्वै गये केस, रोय रँग रूप गँवावा।
सेजन को बिस्राम, पिया बिन कहूँ न पावा॥
कह गिरिधर कविराय, लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव, कहा करिहौं लै सोना॥

दौलत पाय न कीजिये, सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि को, ठाँउ न रहत निदान॥
ठाँउ न रहत निदान, जियत जग में यश लीजै।
मीठे बचन सुनाय, विनय सब ही सों कीजै॥
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घर डोलत।
पाहुन निशि दिन चारि, रहत सब ही के दौलत॥

गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनैं सब कोय॥
शब्द सुनैं सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को इक रंग, काक सब भये अपावन॥

कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के ।।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के ।।

साईं सब संसार में; मतलब को व्यवहार ।
जब लगि पैसा गाँठ में, तब लगि ताको यार ।।
तब लगि ताको यार, यार सँगही सँग डोलैं ।
पैसा रहा न पास, मुख से नहिं बोलैं ।।
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई ।
करत बेगरजी प्रीति, बिरला कोई साईं ।।

रहिये लटपट काटि दिन, बरु घामें माँ सोय ।
छाँह न वाकी बैठिये, जो तरु पतरो होय ।।
जो तरु पतरो होय, एक दिन धोखा दैहै ।
जा दिन बहै बयारि, टूट तब जर से जैहै ।।
कह गिरिधर कविराय, छाँह मोटे की गहिये ।
पाता सब झरि जाय, तऊ छाया में रहिये ।।

बिहारीलाल

अनमोल दोहे

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीत बहार।
अब अलि रही गुलाब में, अपत कटीली डार।
इही आस अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल ॥
ह्वै है बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल ॥
कर लै सूँघि सराहि कै, सबै रहै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब कौं, गँवई गाहक कौन ॥
अरे हंस या नगर में, जैयो आप विचारि।
कागनि सों जिन प्रीति करि,कोकिल दई बिडारि ॥
चले जाहु ह्याँ को करत, हाथिन को व्यौपार।
नहिं जानत या पुर बसत, धोबी ओंड कुम्हार ॥
करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गंधी मति अंध तू, इतर दिखावत काहि ॥
कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात है, या पाये बौराय ॥

चटक न छाँड़त घटत हू, सज्जन नेह गँभीर।
फीको परै न, बरु फटै, रँग्यो चोल रँग चीर॥
नीच हिये हुलसे रहैं, गहै गेंद को पोत।
ज्यों ज्यों माथे मारिये, त्यों त्यों ऊँचो होत॥
कबौं न ओछे नरन सों, सरत बड़न को काम।
मढ़ो दमामा जात कहुँ, कहि चूहे के चाम॥
कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊँचो चढ़ै, तऊ नीच को नीच॥
दुसह दुराज प्रजानि कौ, क्यों न बढ़ै अति दंद।
अधिक अँधेरो जग करैं, मिलि मावस रवि-चंद॥
बसै बुराई जासु मन, ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जप दान॥
बड़े न हूजे गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय॥
संगति सुमति न पावही, परे कुमति के धंध।
राखौ मेल कपूर में, हींग न होत सुगंध॥

कठिन शब्दों के अर्थ

पृष्ठ ३

दुलहा दुलहिन—परमात्मा आत्मा। छीर—चीर, दूध। नीर-पानी। सुरत-ध्यान।

पृष्ठ ४.

जीहड़िया-जीभ। निसुबास-रात दिन। मीच-मृत्यु। दाझना-जलना। दुहागिन-विधवा।

पृष्ठ ५.

दब-आग। बनराय-बड़ा वृत्त। लेहँड़े-झुण्ड।

पृष्ठ ६.

केरा-का।

पृष्ठ ७.

नीपजै-उत्पन्न होवे। दीदार-दर्शन। अनहद-कान के छिदों को बंद करने से सुनाई देने वाला शब्द।

पृष्ठ ८.

रपटीली-जहाँ पैर फिसल जाए। अधर-अन्तरित्त में, न नीचे न ऊपर। निमिख-पल भर।

पृष्ठ ६.

भवानी–पार्वती। बाहै–बहती है । मीन–मछली।

पृष्ठ १०.

बास–गन्ध। मुकर–शीशा।

पृष्ठ ११.

परगसी–प्रकाशित हुई। सूरू–सूर्य। छाजा–शोभित होता है। छन्द–रूप । पुछार–मोर (पूँछ वाला) । गिउ–ग्रीवा, गर्दन।

पृष्ठ १२.

दोख— संध्याकाल। हँकारि–बुला कर। प्रिथिमी–पृथ्वी । प्रेम-बार–प्रेमद्वार। मेरवै–मिलावे।

पृष्ठ १३.

बल्लरियों–बेलों। अलियों–भ्रमरों। संकलित–संगृहीत।

पृष्ठ १४.

नभ–आकाश। चंचला–बिजली।

पृष्ठ १५.

अरुण–सूर्य। अभिराम–सुन्दर। मल्लिका–मोतिया फूल। कूल–किनारा।

पृष्ठ १६.

मंथर गति–धीमी चाल। रसाल–आम।

पृष्ठ १७.

अलि–सखी । विधुरा–व्याकुल । कालानिल–कालरूपी वायु। अभिनय–नाटक।

पृष्ठ १८.

विजन–एकान्त। सुरभित–सुगन्धित। श्रान्ति–थकावट। खग–पक्षी।

पृष्ठ १६.

प्रसून–फूल। सौरभ–सुगन्ध। विलीन–लुप्त, नष्ट।

पृष्ठ २०.

अविरत–लगातार। उषा–प्रातःकाल। आनन–मुख। स्तब्ध–निश्चल, स्थिर।

पृष्ठ २१.

समीर–वायु। निःश्वास–आहें। मधुमास–चैत का महीना। वात–वायु। बिथुरा देती–बखेर देती।

पृष्ठ २२.

तुमुल-तम–घोर अंधकार। तन्द्रा–आलस्य। खद्योत–जुगनू। दृग–आँखें।

पृष्ठ २३.

अवसान–समाप्ति, अन्त। द्युतिमान–तेजयुक्त।

पृष्ठ २४.

निस्पंद–स्थिर। प्रवाहिनी–नदी। शलभ–पतंग। प्रस्तर–पत्थर। दामिनी–बिजली।

पृष्ठ २५.

आसक्ति–अनुराग, लगन। मुक्तावलियाँ–मोतियों की लड़ियाँ। रोली–लाल बुकनी।

पृष्ठ २६.

मर्मर–पत्तों के खड़खड़ाने का शब्द। गोधूली–सायंकाल। तिमिर–अंधकार। पारावार–समुद्र।

पृष्ठ २७.

रजनी–रात। तरिणी–नौका। कर्णाधार–मल्लाह। पराग–पुष्पधूलि।

पृष्ठ २८.

आर्द्र–अश्रुयुक्त, गीले।

पृष्ठ २९.

वितरण–बाँटना। मधुशाला–मदिरा पीने का स्थान। हाला–शराब। विद्रुम–मूँगा। स्मित–मुसकराहट।

पृष्ठ ३०.

तुंग–ऊँचा। सुरसरिता–गंगा। सरसिज–कमल। शुचिता–पवित्रता।

पृष्ठ ३१.

इन्दु–चाँद। निशीथ–आधीरात। तड़ित्तूलिका–बिजली की कूची (ब्रश)।

पृष्ठ ३२.

अरविंद–कमल। शुभ्र–सफेद। खेवनहार–मल्लाह।

पृष्ठ ३३.

समीरण–वायु। परिधान–ओढ़ने का कपड़ा। विहग–पक्षी।

पृष्ठ ३५.

प्राची–पूर्व दिशा। अनूप–अनुपम।

पृष्ठ ३६.

प्रवास-विदेश के लिए रवाना हो जाना। क्रोड़-गोदी । व्योम-आकाश ।

पृष्ठ ३६.

समुद-प्रसन्नता पूर्वक। आलोक-प्रकाश ।

पृष्ठ ४०.

नन्दनवन-स्वर्ग का बाग।

पृष्ठ ४१.

व्यक्त-स्पष्ट।

पृष्ठ ४२.

सृजन किया-बनाया। पिपासा-प्यास ।

पृष्ठ ४३.

पदक्षेप-पाँव रखना। मर्त्य-मनुष्य ।

पृष्ठ ४४.

ज्वार-लहरों का चढ़ाव। जिज्ञासा-जानने की इच्छा।

पृष्ठ ४४.

पोत-जहाज।

पृष्ठ ४६.

अन्तस्तलमें-हृदय के भीतर ।

पृष्ठ ४७.

आभास-झलक। कीला-रोक दिया।

पृष्ठ ४८.

सान्त्वना-तसल्ली, दिलासा ।

पृष्ठ ४६.

सलिल–पानी। आगार–भंडार। अगम–जिसके पास पहुँचा न जासके।

पृष्ठ ५०.

विभा–कान्ति, शोभा। अशनि–बिजली। उद्दाम–प्रबल।

पृष्ठ ५३.

कानि–लाज, बढ़ाई। थाँने–तुम्हें।

पृष्ठ ५४.

दस्त–हाथ। बिसाल–विशाल, दीर्घ। बच्छल–वत्सल, प्यारा।

पृष्ठ ५५.

पंगु–लँगड़ा। तुरंग–घोड़ा। आड़े–विपत्ति के समय। नेक--ज़रा भी।

पृष्ठ ५६.

उघारी–नंगी। श्रीवृषभानदुलारी–राधिका जी।

पृष्ठ ५७.

बधिक–कसाई। बहुरि–फिर। नाँघत–लाँघना।

पृष्ठ ५८.

ठौर–स्थान। बदन–मुँह। सिरात–बीतते थे।

पृष्ठ ५९.

पुरन्दर–इन्द्र, वर्षा। कालिंदी–यमुना। कलधौत–सुवर्ण।

पृष्ठ ६०.

बैन–वचन। सारद–सरस्वती। अहीर–ग्वाला। चतुरानन–ब्रह्मा। अबार–देर। ब्रह्म–संसार। दुरो–छिपा हुआ।

पृष्ठ ६२.

वेदनाएँ–पीड़ाएँ। नवनी–नवनीत, मक्खन। कजरी–काली आँखों वाली । वामा–स्त्री।

पृष्ठ ६३.

अवनि–पृथ्वी। सिगरी–सारी। भूजात–वृक्ष। विकच–फूला हुआ।

पृष्ठ ६४.

कुरंग–हरिण। बाहिज–बाहिर से ऊपर से, दिखावटी। खोरी–दोष। पुनीता–पवित्र । दाड़िम–अनार ।

पृष्ट ६५.

अनख–क्रोध। कुररी–क्रौंच (स्त्री०)। श्रुति–वेद। खाँगे–अभाव।

पृष्ठ ६६.

पाथोद–बादल। आयत–दीर्घ। पस्संति–पश्यन्ति, देखते हैं। आमिष–मांस। पंचानन–शेर।

पृष्ठ ६७.

निपाता–मारा। भूसुर–ब्राह्मण। विरंचि–ब्रह्मा।

पृष्ठ ६८.

नवधा–नौ प्रकार की। भामिनी–नारी। पंकज–कमल।

पृष्ठ ६९.

निकर–समूह। बगमेल–पंक्तिबाँध कर धावा करना।

पृष्ठ ७०.

बरूथा–सेवा। बसीठी–दूत। उमा–पार्वती। भृंगा–भ्रमर।

पृष्ठ ७१.

बक–बगुला। मज्जनु–स्नान। ब्रजबतिनि–ब्रज की गोपिकाओं ने।

पृष्ठ ७२.

बिरुद–गुण, यश। परसि–स्पर्श करके। मारुत सुत–हनुमान।

पृष्ठ ७३.

रावरे–तुम्हारे। पाहन–पत्थर। बारक–एक बार।

पृष्ठ ७४.

प्रबोध–शिक्षा, सांत्वना।

पृष्ठ ७५.

स्वापत्य धर्म–अपना संतानधर्म। अग्रज–बड़ा भाई।

पृष्ठ ७६.

पटरानी-महारानी (कौशल्या)। कृत कर्म–पिछले जन्म के कर्म।

पृष्ठ ७७.

पदपद्म–चरणकमल। अवलम्बदायिका–सहारा देने वाली।

पृष्ठ ७८.

विधि-विधि- दैव के काम। समीर–वायु। अवसन्न–उदास। दिग्दैत्य-दिशा रूपी राक्षस।

पृष्ठ ७९.

श्यामता–अँधेरा। रजनी–रात। सचिव–मन्त्री (सुमन्त्र)। रसातल–पाताल। तमी–रात।

पृष्ठ ८०.

अमात्य–मन्त्री (सुमंत्र)। अमर–देवता। सुरकार्य–देवों का काम (रावणवध)। कोलाहल–शोर।